॥ श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ॥

।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ।।

श्रीकृष्ण प्रार्थना शतकम्

-प्रा. हरिशरण उपाध्याय

✻ श्रीसर्वेश्वरो जयति ✻
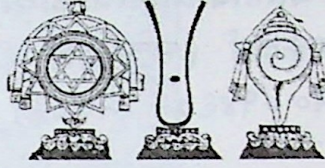
॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

अमोघ-

श्रीकृष्ण-प्रार्थना-शतकम्

रचयिता-

प्रा० हरिशरण उपाध्याय

व्या. सा. वेदान्ताचार्य

प्रकाशक-

अ० भा० श्रीनिम्बाकाचार्यपीठस्थ शिक्षा समिति

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

पुष्करक्षेत्र, किशनगढ.- अजमेर (राजस्थान)

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी-महोत्सव

वि० सं० २०६०　　　　श्रीनिम्बार्काब्दः ५०९८

पुस्तक प्राप्ति स्थान--

१. अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

फोन नं० ०१४६७ - २२७८३१

२. श्रीनिम्बार्क दर्शन केन्द्र

प्रतीक वृन्दावन, गैंडाकोट - १

नवलपरासी, नेपाल

फोन नं० ०५६ - ५२२६१४

प्रथमावृत्ति--

दो हजार

मुद्रक--

श्रीनिम्बार्क - मुद्रणालय

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

न्यौछावर

पन्द्रह रुपये

* श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते *

प्रातः सखीनामतिगूढगीते-
वींणाध्वनेर्गुञ्जनतो विनिद्रौ ।
असीम सौन्दर्यविभासिताशौ
राधाहरी भावपरः प्रणौमि ॥

द्वैताद्वैत उदात्तवेदभणितः सूत्रैस्तथा साधितः
सिद्धान्तो निरवद्य आविरभवद् यस्य प्रसादाद्भुवि ।
श्रीराधाहरिपादभक्तिजमहामाधुर्यभावोदधे-
र्धारा भूरि यतोऽवहत् तमनिशं निम्बार्कमीडे नतः॥

विद्याविद्योतितान्तर्बहिरतनुविभो निम्बभानुप्रभावो
निम्बार्काचार्यपीठाधिपतिरखिलभू मण्डले मान्य एकः ।
श्रीराधाकृष्णसर्वेश्वरपद कमलेष्वर्पितात्मीयभावः
श्रीराधापूर्दसर्वेश्वर शरणगुरुर्देशिको मे हृदि स्यात् ॥

शरदिन्दु कलेव शान्तिदं
सदलीनां सहकारमञ्जरीम् ।
भगवत् शरणाख्य सद्गुरुं
सदसज्ज्ञानमरालमाश्रये ॥

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर-

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज

अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ-सलेमाबाद

अजमेर-राजस्थान

की

श्रीकृष्ण-प्रार्थना-शतक प्रति

-- शुभाशंसा --

श्रीभगवत् प्रार्थना की महिमा अनुपम और असीम है, यह प्रार्थना दैन्यभाव सम्वलित हो, और शुद्ध अन्तःकरण से की गई हो तो, स्वर्ण में सौरभ की तरह लोकोत्तर महत्व शाली होती है, करुणावरुणालय श्रीसर्वेश्वर परम कृपासिन्धु हैं, वे दयार्णव हैं । यों तो प्राणीमात्र पर उनकी निर्हैतुकी सहज कृपा है, किन्तु कृपासिन्धु श्रीहरि की विशेष कृपा तो उन पर होती है, जिनका अन्तःकरण पवित्र हो सरस हो, श्रद्धा विश्वास से भरा हो । श्रीनिम्बार्क भगवान् ने वेदान्तकामधेनु दशश्लोकी में इसी भाव को व्यक्त किया है । **कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते** अर्थात् जो अत्यन्त दीनता से विनम्र हो, वही भगवत् कृपा का भाजन होता है ।

श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय वृन्दावन के पूर्व प्राचार्य, विद्वद्वरेण्य श्रीहरिशरणजी उपाध्याय व्याकरण-वेदान्ताचार्य (नेपाल) ने **श्रीकृष्ण-प्रार्थना-शतकम्** ग्रन्थ की दिव्य रचना कर जो अनुपम रस वृष्टि की है वह अतीव विलक्षण है । श्रद्धा और विश्वास, प्रेमऔर भक्ति, सौहार्द और आत्मीयता तथा सर्वात्मना समर्पण भाव का ज्वलन्त

उदाहरण है । इस भौतिकवादी युग में भी भगवत्समर्पण का दिव्य दर्शन इस प्रार्थना शतक में होता है ।

रसिक महानुभावों के लिए रोग, आधि-व्याधि विपत्तियों से घिरे विश्वासी भक्तों के लिए यह समर्पण भाव का रसमय ग्रन्थ परमोपादेय है । इसके तन्मयता पूर्वक मनन से नित्य पठन से युगलकिशोर श्रीराधामाधव प्रभु अवश्य ही कृपा करेंगे, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है । श्रीसर्वेश्वर प्रभु श्रीउपाध्यायजी को ऐसी ही रचनाओं से जगत् को एक नयी दिशा देने में समर्थ बनाएँ, ऐसे ही भावपूर्ण रसमय ग्रन्थों के माध्यम से समाज को उपकृत करें, यह हमारी शुभाशंसा है ।

प्रार्थना की अमोघ शक्ति

आबाल,श्रीकृष्णानुरागी, आबाल वृन्दावन निवासी, बाल वैष्णव, बाल्य कवि कोमल कान्त पदावली के मधुर कवि श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय, वृन्दावन-मथुरा के दर्शन विभागाध्यक्ष, प्राचार्य, नेपाल वास्तव्य मेरे प्रथम विद्याशिष्य श्रीहरिशरणजी उपाध्याय द्वारा लिखत श्रीकृष्ण-प्रार्थना-शतक, लेखक के मुख से ही पूरा सुनने को मिला, उसकी पृष्ठभूमि भी उन्होंने स्वयं सुनाई ।

अनन्त अचिन्त्य स्वाभाविक कल्याणगुणगणनिलय, जगन्नियन्ता, जगदाधार, जगदभिन्ननिमित्तोपादानकारण, सर्वज्ञ सर्ववित्, सर्वसाक्षी सर्वेश्वर रसिकशेखर, रासेश्वर, वृन्दावनेश्वर, अखिल अवतारों में परमोदार किशोराकृति गोपीजनवल्लभ द्विभुज वंशीधर श्रीकृष्ण, प्रपन्न वाञ्छा कल्पतरु हैं, प्रपन्नभयहारी हैं, तथा प्रपन्नापराधविसारी हैं, यह श्रुति-स्मृति समस्त शास्त्रों का शाश्वत उद्घोष है ।

उनकी प्रार्थना आत्म कल्याण के लिए अमोघ साधन मानी गयी है । आत्मशुद्धि, आत्मबोध तथा आत्मशान्ति के लिए वेद में सर्वप्रथम प्रार्थना को प्रधान साधन के रूप में प्रयोग किया गया है । वेदमाता गायत्री में शुभकर्म, शुभसंकल्प, शाश्वत शान्ति तथा परमात्म प्रकाश के लिए ध्यान और प्रार्थना ही सर्वप्रथम सवितृदेव सर्वेश्वर से की गई है । **धियो यो नः प्रचोदयात्** ।

हमारे वैदिक सिद्धान्त में बहुदेवतावाद है, सूर्य, गणपति, अग्नि, दुर्गा,शिव, इन पञ्चदेवताओं तथा विष्णु की पूजा का बड़ा महत्व है । वेदों में उक्त देवताओं की स्तुतियों मे अनेकानेक ऋचाएँ उपलब्ध है । वे सबके सब देवता जगत् कल्याण कारक हैं, परन्तु इन सबमें परम विष्णु गोपविष्णु श्रीकृष्ण का ही सर्वोपरि महत्व है । वेदों में पुरुषसूक्त,

विष्णुसूक्त जैसा कोई सूक्त नहीं । **नैताभ्यां सदृशोमन्त्रो वेदेषूक्त-श्चतुर्ष्वपि** कहा गया है । इनमें पुरुषसूक्त वेद का शिर माना गया है । अतएव यह मन्त्रोपनिषद् ईशावास्य आदि समस्त उपनिषदों में इसी के भाष्य हैं । छान्दोग्य,वृहदारण्यक आदि उपनिषदों का भी बीज यही पुरुषसूक्त है । इन सबमें परम विष्णु श्रीकृष्ण की ही सर्वोपरि महिमा का वर्णन हैं । ऋग्वेद में श्रीकृष्ण को काम वर्षी कहा गया है । **उरुगाय वृष्णे** उनके परम धाम गोलोकधाम को सर्वोपरि धाम माना गया है । **यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयास** उनके ही स्वरूपभूत परमधाम वृन्दावन में माधुर्य की अजस्रधारा बहती रहती है । **विष्णोः परमे पदे मध्व उत्सः** कामवर्षी श्रीकृष्ण ही समस्त कामनाओं को प्रदान कर सकते हैं अन्यान्य देवताओं की आराधना द्वारा प्राप्त होने वाली कामनाएं भी कृष्ण के द्वारा ही प्राप्त होती हैं ।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।।
स तया श्रद्धया युक्त स्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान् ।।

परन्तु अन्यान्य देवताओं द्वारा प्राप्त होने वाला फल अविनाशी नहीं होता, **अन्तवत्तु फलं तेषां तद् भवत्यल्पमेधसाम्** उन अन्य देवताओं के आराधक अल्पबुद्धि साधकों का फल सान्त होता है, अर्थात् वे आराधक समस्त कामनाओं को प्रदान करने वालों में समर्थ होते हुए भी मोक्षरूप शाश्वत फल नहीं प्रदान कर सकते, मोक्ष प्रदान करना, भगवान् श्रीकृष्ण का विशेष अधिकार है । **तमेव विदित्वाऽ-तिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय** सकल कामना वर्षी श्रीकृष्ण मोक्ष सहित धर्म, अर्थ, काम, समस्त पदार्थों को दे सकते हैं उनकी प्रार्थना कभी मोघ नहीं होती व्यर्थ नहीं होती । कहते है--

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटि शतैरपि ॥
प्रारब्ध कर्मणां भोगादेव क्षयः आदि-आदि

परन्तु कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सर्वसमर्थ भगवान् श्रीकृष्ण के लिए भला कुछ भी असम्भव है ? नहीं । कुछ अनन्याश्रय पक्षपाती महाभाग ऐसा भी कहते हैं, प्रभु से कुछ भी नहीं मांगना चाहिए । घोर संकट, घोर कष्ट भयावह आधि-व्याधि के आने पर उनकी निवृत्ति के लिए कुछ भी नहीं कहना चाहिए, उनसे तो सदा ऋषि मुनि देव दुर्लभ अहैतुक प्रेम ही प्रार्थनीय है । इसमें कोई संशय नहीं कि प्रेम सर्वोपरि वस्तु है, एकमात्र वही वाञ्छनीय है, और वह व्यक्ति बड़भागी है जो घोर संकट में प्रभु को कष्ट नहीं देता । परन्तु मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यदि सांसारिक विपत्ति, रोग, भय आदि भजन में बाधक हो रहे हों तो तन्निवारणार्थ प्रभु से प्रार्थना अनुचित नही कही जा सकती । इसमें अनन्याश्रय के व्याघातक का कोई प्रश्न नहीं । जिस तरह भगवान् की आज्ञा समझ कर नित्यनैमित्तिक कर्मानुष्ठान अनन्याश्रय का बाधक नहीं माना जाता, उसी तरह भजन में, सदाचारानुष्ठान में, धर्म प्रचार में अन्तरायस्वरूप रोगादि निवारणार्थ श्रीकृष्ण प्रार्थना अनन्याश्रय बाधक नहीं, भक्तिपथ-विरोधी नहीं, शरणागत धर्म-परिपन्थी नहीं, अपितु शरणागति के षड्विध अंगों में गोप्तृत्ववरण प्रमुख अंग माना गया है । गोप्तृत्ववरण का अर्थ है संकट आने पर उसके निवारण हेतु प्रभु से प्रार्थना करना, साथ ही **रक्षिष्यतीति विश्वासः** प्रार्थना करने पर प्रभु रक्षा करेंगे, यह विश्वास भी शरणागति के अंगों में अन्यतम अंग है ।

इस तरह श्रीकृष्ण प्रार्थना सर्वमंगलदायिनी तथा सकल अमंगल विनाशिनी है । **मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलनाम्** श्रीकृष्ण नाम मंगलों के भी मंगल तथा अशेष अमंगल विनाशक है । **यन्नामामङ्गलघ्नम्** ।

(श्रीमद्भागवत)

प्रस्तुत श्रीकृष्ण प्रार्थना शतक में भक्त की हार्दिक पुकार है, हार्दिक वेदना है, श्रीकृष्ण के साथ आत्मीयता भरा भाव है, शिशु का मां के प्रति, सखा का सखा के प्रति, प्रियतमा का प्रियतम के प्रति जैसे- कोई दुराव नहीं, छिपाव नहीं, अलगाव नहीं, उसी तरह लेखक कवि का परम भक्त कवि का आबाल वैष्णव कवि का अपने आराध्य के प्रति उलाहनाभरा तथा आत्मीयता भरा भाव पद-पद पर छलकता है । झलकता है । निष्ठा का असीम भाव, श्रद्धा का असमोर्ध्व पर्यवसान तथा विश्वास का अखण्ड साम्राज्य ।

इस प्रार्थना शतक में जिस प्रकार लेखक की साध पूरी हुई है उसी तरह जो कोई भी भक्त इस प्रार्थना शतक का नित्य श्रद्धा विश्वास के साथ पाठ करेगा उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होगी ऐसा मेरा विश्वास है ।

यद्यपि भक्तिभाव से परिपूर्ण इस शतक की साहित्यिक या कवित्व दृष्टि से मूल्याङ्कन मेरी समझ से सर्वथा अनावश्यक है, तथापि कहना न होगा कि कलापक्ष की दृष्टि से भी यह सर्वथा अनवद्य है ।

यह प्रार्थना शतक नानाविध आधि-व्याधिग्रस्त वर्तमान जगत् का कल्याणकारी होगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है ।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु--

श्रीवैद्यनाथ झा

व्या. वे. न्यायाचार्य

एम. ए. संस्कृत-हिन्दी साहित्यरत्न

राष्ट्रपति पुरस्कृत पूर्व प्राचार्य-

श्रीनिम्बार्क स्नातकोत्तर महाविद्यालय

वृन्दावन -- मथुरा (उ० प्र०)

वेदान्तवेद्य की महनीय प्रार्थना

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय, शास्त्रयोनित्वात्, तत्तु समन्वयात्, वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्यः इत्यादि श्रुति-सूत्र-स्मृति रूप प्रस्थानत्रयी संज्ञक वेदान्त शास्त्र के प्रतिपाद्य विषय, अनन्त कल्याणगुणसागर, विश्वोत्पत्त्यादिहेतु, भक्तिप्रपत्यादि-साधनैकलभ्य, ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिवन्द्य, अचिन्त्यमहिमा, सर्वेश्वर भगवान् युगलस्वरूप श्रीराधाकृष्ण की प्रार्थना ही सर्वोत्कृष्ट महनीय प्रार्थना है । समस्त वैष्णवाचायर्यों नें अपनी-अपनी उपासना में आराध्य के गुण स्वरूप स्वभाव के अनुरूप स्तोत्र साहित्य की रचना करके अति मधुर प्रार्थना की है । सुदर्शनचक्रावतार भगवन्निम्बार्काचार्य द्वारा विरचित वेदान्त कामधेनु (दशश्लोकी) प्रात:स्मरणस्तोत्र, श्रीराधाष्टक तथा परवर्ती पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत सविशेष-निर्विशेष कृष्णस्तवराज, श्रीकेशवशरणागतिस्तोत्र, श्रीकृष्णशरणापत्तिस्तोत्र, श्रीगोपीजन-वल्लभाष्टक आदि सभी स्तोत्र उपास्यदेव की प्रार्थना संवलित उपासना तत्त्व का दिव्य समुपदेश हैं । श्रीसम्प्रदाय के स्वामी श्रीयमुनाचार्य का आलवन्दारस्तोत्र, वल्लभसम्प्रदाय का मधुराष्टकस्तोत्र आदि परम मन-नीय हैं ।

स्तोत्र साहित्य या प्रार्थना साहित्य की परम्परा अति प्राचीन है । वैष्णवाचार्य ही नहीं अपितु अद्वैतवीथी पथिक स्वयं शंकराचार्य भी अपनी सुमधुर स्तोत्र रचना द्वारा श्रीकृष्णतत्त्व का असमोद्ध्र्व विवेचन करते हैं । अपनी माताश्री की भावना के अनुरूप आपने श्रीकृष्णाष्टक स्तोत्र की रचना की है जो अत्यन्त मधुर है । उनके भाव हैं--

विना यस्य ध्यानं व्रजति पशुतां सूकरमुंखां
विना यस्य ज्ञानं जनिमृति भयं याति जनता ॥

विना यस्य स्मृत्या कृमिशतजनिं याति स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥

अर्थात् जिनके ध्यान के विना जीव समूह सूकर-कूकर आदि दुर्योनियों में जाता है, जिनको जाने विना जन्म-मृत्यु के भय से मुक्त नहीं हो सकता, जिनकी स्मृति के विना वह जीव संघ शतशः कीट-पंतग की योनि में भटकता है, जो शरणागतवत्सल हैं, वे सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण मेरे दृष्टिगोचर हो जायें । इत्यादि अद्‌भुत माधुर्यभाव से आपने प्रार्थना की है । स्तोत्र के अन्त में लिखा है-

इतिहरिरखिलात्माऽराधितः शंकरेण
श्रुतिविशदगुणोऽसौ मातृमोक्षार्थमाद्यः ॥
यतिवरनिकटे श्रीयुक्त आविर्बभूव
स्वगुणवृत उदारः शंखचक्राब्जहस्तः ॥

इतना ही नहीं महाकवि मयूर को किसी अपराध के कारण कुष्ट रोग हो गया था । उन्होंने सूर्यशतक स्तोत्र से सूर्य भगवान् की प्रार्थना की और वे कुष्ट रोग से मुक्त हो गये थे । पण्डितराज जगन्नाथजी ने जब आर्तभाव से गंगाजी का स्तवन किया जो गंगालहरी के नाम से प्रसिद्ध है, उस स्तोत्र के प्रभाव से गंगादेवी ने अपने उत्ताल तरङ्ग रूपी भुजाओं से पण्डितजी को गोद में उठा कर स्वयं में विलीन कर दिया । यह दुर्घटना नहीं उनकी भावना थी, तदनुरूप उन्हें मुक्ति मिली ।

निश्छल भाव से की गयी प्रार्थना में अपरिमित शक्ति होती है । स्वामी श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती ने वृन्दावन महिमा स्तोत्र द्वारा श्री धाम का स्तवन किया तो उन्हें दिव्य वृन्दावन के साक्षात् दर्शन हो गये । सुनते हैं एक बार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी को बाहों में असह्य पीड़ा हुई । उन्होंने **हनुमानबाहुक** नामक स्तोत्र द्वारा श्रीहनुमत्लालजी की प्रार्थना की वे स्वस्थ हो गये । इस प्रकार प्रार्थना द्वारा आधि-व्याधि, शोक--सन्ताप, जन्म--मरण आदि सभी कष्ट निवृत्त होते हैं । हमारे

परम पूज्य वर्तमान जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री श्रीजी महाराज ने अपने आराध्य भगवान् श्रीसर्वेश्वर श्रीराधाकृष्ण की अनन्त लीला चिन्तन स्वरूप विपुल स्तोत्र साहित्य-शतक, स्तवविंशति, षोडशी, अष्टक, चतुःश्लोकी, पञ्चश्लोकी आदि की रचना की है । जो उपासना, सिद्धान्त के निधि स्वरूप हैं ।

आचार्य परम्परा की इसी सरणि का अनुसरण करते हुए हमारे परम श्रद्धेय विद्वद्वरेण्य आचार्य श्रीहरिशरणजी उपाध्याय व्या० वेदान्ताचार्य ने **श्रीकृष्णप्रार्थनाशतकम्** नामक ग्रन्थ की रचना की है । यद्यपि यह रचना उच्च रक्तचाप आदि विविध व्याधिजन्य पीड़ा की अवस्था में व्याधिमुक्ति के लिए आर्तभाव से की गयी प्रार्थना है तथापि विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों की समीक्षा के साथ स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त एवं नित्यनिकुञ्जविहारी श्रीराधाकृष्ण युगललाल की रसमयी उपासना का अत्यन्त सुगम शैली में किया गया विवेचनात्मक ग्रन्थरत्न समुद्भूत हुआ है । आप व्याकरण एवं वेदान्तदर्शन के परम्परागत मर्मज्ञ विद्वान् तो हैं ही, काव्य रचना और साहित्य लेखन में भी सिद्धहस्त हैं । वर्तमान समय में आप जैसे सदाचारनिष्ठ, शब्दब्रह्मचिन्तक, परब्रह्मनिष्ठ विचक्षण विद्वान् बिरले ही देखने को मिलते हैं ।

आपने दीर्घकाल तक श्रीधाम वृन्दावन में निवास करते हुए श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय में वेदान्त विभागाध्यक्ष एवं प्राचार्य पद को अलंकृत किया । अत्यन्त वैदुष्यपूर्ण शैक्षणिक कार्य से सर्वत्र ख्याति अर्जित की । आप मूलतः नेपाल निवासी हैं । अतः सेवानिवृत्ति के बाद अब नेपाल में लुम्बिनी अञ्चल के नवलपरासी जिला अन्तर्गत गैंडाकोट में निवास करते हैं । वहाँ पर श्रीनिम्बार्क दर्शन केन्द्र - राधा-कृष्ण मन्दिर के अध्यक्ष पदासीन होकर संस्था का संचालन कर रहे हैं । आपही के सत्प्रयास से गतवर्ष अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री श्रीजी महाराज की नेपाल यात्रा सम्पन्न हुई थी ।

उसी अवसर पर पूज्य महाराजश्री के करकमलों द्वारा उक्त संस्था का समुद्घाटन हुआ था । श्रद्धेय शास्त्रीजी संस्कृत, हिन्दी, नेपाली तीनों भाषा के उद्भट विद्वान् हैं । तीनों भाषाओं में आपकी विभिन्न कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं । आपने जब यह रचना श्रीकृष्णप्रार्थनाशतकम् हिन्दी अनुवाद सहित पूज्य आचार्यश्री की सेवा में प्रस्तुत की तब आचार्यश्री ने प्रसन्नता के साथ इसका प्रकाशन श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ से कराने की अनुज्ञा प्रदान की । तदनुसार ग्रन्थ सम्पादन का दायित्व इन पंक्तियों के लेखक को दिया गया । इससे पूर्व क्रमदीपिका जैसे दुरूह आगम ग्रन्थ की हिन्दी व्याख्या भी आपने की है, उसका सम्पादन भी इसी अकिञ्चन ने किया था । आपके साथ मेरा सम्पर्क संवत् २०१३ से है । प्रथम मिलन में आपकी सहृदयतापूर्ण आत्मीयता जो मेरे प्रति रही और मेरा भी उनके प्रति जो पूज्यभाव बना वह आज भी नित्य नूतनता के साथ दृढतर बना हुआ है । ग्रन्थ के सम्पदान एवं प्रूफ संशोधन में बारीकी से गम्भीरता पूर्वक चिन्तन करने का सौभाग्य मिला । वस्तुतः एक संवेदनशील हृदय की आन्तरिक अभिव्यक्ति भक्तिज्ञानप्रपत्ति की पीयूषधारा के रूप में प्रवाहित हो रही है ।

प्रसाद गुण सम्पन्न कृति की भाव गम्भीरता के साथ अनावरकता सहज ही देखी जा सकती है । भाषा शैली गंगा प्रवाहवत् गतिशील है । श्रीकृष्ण में साकार निराकार रूप परस्पर विरुद्ध भाव भी कितनी स्वाभाविकता के साथ समन्वित हो रहे हैं, देखें--

सदाऽसि साकार उपासकानां निराकृतिस्तत्वविदां तदैव ।
यथा यथा साधकभावनाऽस्ति तथा तथा त्वं प्रतिभासि कृष्ण !॥

हे श्रीकृष्ण ! जिस समय आप भावुक उपासकों की भावना में श्रीराधाकृष्ण युगलस्वरूप में दिखाई देते हैं उसी समय तत्त्ववेत्ता वेदान्तियों की धारणा में निर्विशेष निराकार ब्रह्मतत्व के रूप में अनुभूत

होते हैं । जैसी-जैसी साधकों की भावना होती है आप वैसे-वैसे ही बनते हैं, यही है आपकी सर्वस्वरूपता ।

इस प्रकार यह कृति भक्तिज्ञानप्रपत्ति की त्रिवेणी बन गयी है। जिसमें अवगाहन करने पर जन्म-जन्मान्तरीय अविद्या जन्य वासनामय बन्धन से मुक्ति मिल जायेगी और सहज ही भगवद्भाव प्राप्त हो जायेगा। आपकी यह कृति आत्मानुभूति, शास्त्रज्ञता और स्थितप्रज्ञता का साकार रूप है । ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में स्वरचित फुटकर कविताएँ - सूर्याष्टकम्, गंगागौरवम्, वृन्दावनस्वरूपम्, हनुमदष्टकम् समाविष्ट हैं । जिससे ग्रन्थ की उपादेयता और भी बढ गयी है । व्याधि निवृत्ति के लिए भगवत्प्रार्थना दिव्योपचार है । पूज्य शास्त्रीजी स्वयं इसका प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके हैं । अतः यह शतक अनुभूत प्रयोग के रूप में लोक विख्यात होगा और सभी श्रद्धालु पाठक जन इस भक्तिज्ञानप्रपत्ति की सुधासरिता में अवगाहन कर शारीरिक-मानसिक व्याधियों से विमुक्त हो जायेंगे ऐसा मैं दृढ़ विश्वास करता हूँ ।

विदुषांविधेय--

वासुदेवशरण उपाध्याय

व्या. सा. वेदान्ताचार्य

प्राचार्य--

श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय

निम्बार्कतीर्थ - सलेमाबाद

जि० अजमेर (राज०)

शतक रचना की पृष्ठभूमि

राधे ! राधे राधे राधे राधे राधे पाहिमाम् ।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्षमाम् ।।

६ दिसम्बर उन्नीस सौ चौरानब्बे को विशेषरूप से मेरी शारीरिक अस्वस्थता प्रतीत हुई । छात्रों के अध्यापन में मन नहीं लगा, अधिक शिथिल हुआ । मैंने समझा कि शायद शैत्य प्रकोप से ऐसा हुआ हो । विद्यालय से आवास पर गया । आयुर्वेदिक रसायन लिया, गले का अवरोध तो शान्त सा हुआ । शरीर की स्थिति ऐसी हुई कि चलते फिरते समय नियत स्थान पर पांव नहीं टिकते से हुए, हवा में उड़ता सा प्रतीत होने लगा । सिर में कुछ ऐसा लगने लगा कि इसमें मस्तिष्क ही नहीं है, यह क्रम करीब तीन या चार दिन तक रहा । शीतकाल होने से उसी को वजह मानकर रसायन का सेवन भी करता रहा । एक दिन अधिक बैचैनी हुई तो मैं डा० वाई. एन. गुप्ता जो वृन्दावन के माने हुए अनुभवी और शीतल स्वभाव के डाक्टर हैं, उनके पास गया । उन्होंने सर्वप्रथम रक्तचाप देखा तो वाञ्छनीय सीमा से बहुत अधिक था । दवा दी, और मुझको बड़ी शालीनता से समझाया कि आप परहेज से रहें, ठीक हो जाएंगे । मुझे आश्वस्त किया । किन्तु मेरे मन में बड़ी अशान्ति बनी रही, मुझ में इससे पूर्व कोई खास रोग भी नहीं था । मुझ में एक कमजोरी यह थी कि रोग परीक्षण कराने में घबड़ाता था, क्योंकि कोई विशेष रोग निकल आया तो उसकी वजह से और चिन्ता बढ़ेगी, वह चिन्ता ही विशेष रोग के रूप में परिणत हो जायेगी । दूसरी घटना १४ दिसम्बर ९४ को यह हुई कि दिन के करीब २ बजे बायीं पसली में मामूली टीस सी प्रतीत हुई, शोचा कि दर्द तो नहीं बढ़ता जाएगा, टीस की मात्रा बढ़ती ही गई, करते-करते शाम को सात बजे डा. गुप्ताजी के

पास गया । मेरे निवेदन को सुनने के बाद डा. साहब ने कहा कि आप विशेष चिन्ता करते हैं । चिन्ता को रोकिए । मैंने बाहर से तो यह दिखाया कि अब निश्चिन्त रहूंगा । पर मन में और ज्यादा उथल-पुथल हुआ । चिन्ता बढ़ती ही गई । यह जानते हुए कि चिन्ता नहीं करनी चाहिए, चिन्ता को रोकने की कोशिश में ही चिन्ता बढ़ती गई । शरीर क्षीण हुआ, साहस टूटता सा गया । मैंने अपने पुत्र, माधव और देवेन्द्र को जो काठमाण्डू रहते हैं, फोन किया, अपनी अस्वस्थता का समाचार दिया । इस दौरान अन्य कई बाते हुई, जो अधिक चिन्ता के कारण बनी ।

इस चिन्ता को किधर मोड़ूँ समझ नहीं पाया । मोड़ने पर भी चिन्ता शान्त होने की कोई सम्भावना नजर नहीं आती । हालांकि रोग होना कोई बड़ी बात नहीं थी, आज के इस वैज्ञानिक युग में उपचार से रोग ठीक हो जाते हैं । किन्तु संसार की हालात देख-देख कर हैरान होता । खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय के सम्बन्ध में विचार न करने वाले और अक्षम्य अपराध करने वाले लोग, एक ओर खुश-हाल दीखते हैं तो दूसरी ओर सब प्रकार की पवित्रता से रहने वाले, धार्मिक माने जाने वाले सन्त, महात्मा, विद्वान् पेरशान दीखते हैं । यद्यपि मानवमात्र में भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव ये चार सहज दोष होते हैं, इन दोषों से मुक्त कोई भी नहीं हो सकता है, तथापि सन्त-महात्मा, विद्वानों की पूर्ण आस्था तो भगवान् में ही होती है, वे भगवान् के भरोसे रहते हैं । जिनकी आस्था ही नहीं, भरोसा ही नहीं, वे सुखी मालूम पड़ते हैं । कारण क्या है ? आज जो नास्तिक हैं वे पूर्व संस्कार से खुशहाल हैं, जो आस्तिक हैं वे पूर्व संस्कार से पीड़ित हैं । ये सब बातें भी कुक्षि प्रविष्ट थी चिन्ता की धारा में ।

१६ दिसम्बर १९९४ को भगवान् की अर्चना करते समय सहसा मन में आया कि क्यों न मेरे आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना करूं ?

परन्तु शास्त्र का कहना है कि-मनुष्य को निष्काम कर्म करना चाहिए और निष्काम भक्ति करनी चाहिए । फिर प्रभु से प्रार्थना कैसे करूँ, मेरे सामने वही अन्तर्द्वन्द्व की चिन्ता ।

अधिक मन्थन के बाद पुनः निश्चय किया कि निष्काम सकाम उपासना का तारतभ्य अन्य कर्मविशेष, अन्य देव विशेष के लिए है, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना के सम्बन्ध में नहीं है । भगवान् श्रीकृष्ण तो पूर्णतम ब्रह्म हैं, जगत् कारण हैं किंवा सर्वकारण-कारण हैं, सब कुछ श्रीकृष्ण ही हैं । उन से सम्बन्ध जोड़ने के लिए कोई भाव क्यों नहीं सब मंगलमय है । अतएव भगवान् ने कहा कि--

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।

(गी० अ० ६/१६)

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मै व मे मतम् ।

(१८)

हे अर्जुन ! आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी ये चार प्रकार के पुण्यात्मा जन मेरा भजन करते हैं । ये सभी उदार भक्त कहलाते है, ज्ञानी भक्त तो मेरी आतमा हैं । जो नराधम, दुष्कृती, मुढ हैं वे मेरी ओर होते ही नहीं है ।

न मां दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

श्रीमद्भागवत में शुकदेवजी ने कहा--

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ।।

जो भक्त किसी प्रकार की कामना न करने वाला हो, या सभी प्रकार की कामना करने वाला हो, अथवा मोक्ष की कामना करने वाला हो उसको चाहिए कि तीव्र भक्तियोग से भगवान् की यजना करे ।

इन सब बातों के मनन से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि भगवान् श्रीकृष्ण से ही प्रार्थना करनी चाहिए, चाहे सकाम हो चाहे निष्काम हो । मैंने प्रार्थना करना आरम्भ किया, प्रथम दिन ६ श्लोक से प्रार्थना की । यही क्रम जारी रखा, इस प्रकार अट्ठारह दिनों में अर्चना के समय प्रार्थना की, जो १०८ श्लोकों के रूप में हैं । कम से कम वह समय तो मेरा मूल्यवान् रहा । श्रीकृष्ण से जुड़ा रहा । इतने दिनों में केवल आरम्भ में तीन खुराक दवाई ली, उसके बाद नहीं ले रहा हूँ । रक्तचांप के सम्बन्ध में । मन में काफी शान्ति हुई । स्वास्थ्य में सुधार होता गया ।

यहां प्रश्न उठ सकता है कि यदि श्रीकृष्ण प्रार्थना से रोग निवृत्त हो जाएंगे तो औषधोपचार करने की क्या आवश्यकता है तो उत्तर है- आवश्यता है- क्योंकि यह शरीर त्रिगुणात्मक पाञ्चभौतिक तत्वों से बना है ये तत्व सब विकारी हैं । खान-पान सम्बन्धी असन्तुलन या असंयम से शारीरिक रोग होना स्वाभाविक है, इसका उत्तरदायी तो व्यावहारिक व्यक्ति है, प्रार्थना नहीं है । अतः असंयम-असन्तुलन जन्य शारीरिक रोगों का उपचार तो औषधियों से होना है । परन्तु इस उपचार में प्रार्थना सहयोगी अवश्य बनेगी । श्रीकृष्ण प्रार्थना से, सफल चिकित्सक संयोग, अव्यर्थ औषधि संयोग होगा । अतः प्रभु प्रार्थना औषधोपचार में अव्यर्थ सहयोगी होती है । आयुर्वेद शास्त्र का सिद्धान्त है कि औषधि खाने से पूर्व हाथ में औषधि लेकर अच्युत, अनन्त, गोविन्द, (अच्युताय नमः, अनन्तताय नमः, गोविन्दाय नमः) ये तीन नामों का उच्चारण करके औषधि खाना चाहिए ।

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारण भेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

यह भगवान् धन्वन्तरि का अमोघ मन्त्र है । यदि विश्वास की पराकाष्ठा हो तो नाम मात्र के उच्चारण से रोग निवृत्त हो सकते हैं । क्योंकि नाम-नामी में भेद नहीं होता, अच्युत नाम है तो अच्युत ही भगवान् हैं, जो कभी च्युत नहीं होते । नामोच्चारण से स्वयं नामी उपस्थित होते हैं । जहाँ अच्युत उपस्थित हों वहाँ च्युत होने का प्रश्न ही नहीं उठता । उपचार व्यर्थ जाने का प्रश्न भी नहीं रहता । यदि धैर्य हो, संयम हो, किसी की स्तुति प्रशंसा या निन्दा से विचलित न हो, खान-पान-यान आदि विषयों में संयम हो, सदा प्रसन्न रहे तो मनुष्य रोगी ही नहीं हो सकता, कदाचित् हो भी जाए तो संयम से उस रोग को हटा सकता है ।

नाशनतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्तिहि ।
एवं नियमकृद् राजन् ! शनैः क्षेमाय कल्पते ॥

(भा० ष० स्क०)

सदा पथ्य भोजन करने वाला, संयम से रहने वाला व्यक्ति रोगी नहीं हो सकता । नियमित दिनचर्या से रहने वाला व्यक्ति का सदा मंगल होता है ।

परन्तु यह सब इस विषाक्त युग में नहीं हो सकता । आज अन्न-विकास, फल विकास, दूध विकास, घृत विकास, किंवा खाद्य-पेय विकास की भावुकता में ऐसी विषाक्त औषधियों का प्रयोग हो रहा है जिसका परिणाम प्रत्यक्ष देखने को मिल रहा है । यही कारण है कि आज अज्ञात और असमाधेय रोग पनप रहे हैं । अब तो रोग मानव मात्र का स्वाभाविक अंग बन गया है । केवल भगवान् के भरोसे रहना एकमात्र साधन है । यदि व्यक्ति नास्तिक हो या आस्तिक हो, रोग या आपदाग्रस्त

हो जाने पर अन्त में भगवदुन्मुख होकर प्रार्थना करने लगे तो समझ लेना चाहिए कि उसका कल्याण होने वाला है, यह एक कसौटी है । इस स्थापना का निष्कर्ष यह है कि जिस किसी भी व्यक्ति की भगवदुन्मुखता पूर्वक किसी कार्य में प्रवृत्ति हो तो उसकी सफलता होगी ही ।

यद्यपि भगवान् ने कहा है कि--

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन -- हे अर्जुन ! तुम्हारा अधिकार कर्म करने में हैं, फल प्राप्ति में नहीं हैं । भगवान् ने अर्जुन को निमित्त बनाकर संसार के प्राणीमात्र को यह उपदेश दिया है । विशेषकर यह उपदेश उस व्यक्ति के लिए है जो फल प्राप्ति को मात्र मूल उद्देश्य बनाता है । कारण है कि-फल प्राप्ति मात्र को उद्देश्य बनाया जाएगा तो जिन कर्मों से, जिन देवताओं की उपासना से फल प्राप्ति की सम्भावना दिखेगी, उन कर्मों को करने के लिए, अन्य देवी-देवताओं की आराधना के लिए साधक प्रवृत्त होगा । चाहे वह कर्म सत् हो, चाहे असत् हो । उसको तो केवल फल ही चाहिए, इससे साधक भटक सकता है । इसलिए भगवान् ने फलेच्छा न करने की सलाह दी है । दूसरी बात यह है कि यदि फलेच्छा मात्र से कर्म करने, फलेच्छामात्र से देवोपासना करने पर फल प्राप्ति हनीं हुई तो कर्म और देवता प्रति अविश्वास होगा । उस समय यह नहीं समझा जाएगा कि अपनी कर्म साधना और उपासना में कोई त्रुटि हुई होगी । परन्तु केवल फलेच्छा मात्र रखने वाला व्यक्ति तो इन बातों पर ध्यान नहीं देगा, वह तो चाहेगा ही उसे फल प्राप्ति होना ही चाहिए । इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर भगवान् ने कहा--**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** । मनुष्य को कर्म करने का अधिकार तो है, फल उसके अधिकार में नहीं है । इन सब बातों के होते हुए भी श्रीकृष्ण प्रार्थना तो सभी दृष्टियों से उपयुक्त है । चाहे किसी प्रकार से हो, भगवान् से सम्बन्ध जोड़ना उचित है ।

सम्बन्ध जोड़ने पर भगवान् ही उसे बुद्धियोग देते हैं, जिससे श्रीकृष्ण प्राप्ति होगी ।

कहना लिखना व्याख्यान देना सरल है कि सबको निष्काम कर्म करना चाहिए । किन्तु कथन, लेखन, व्याख्यान का क्रियान्वयन करने वाले व्यक्ति विरले ही होंगे । आखिर अनन्य भक्तों को भी भगवान् में प्रेममयी भक्ति होने की इच्छा होती है और मोक्ष प्राप्ति की भी इच्छा होती है, यह फलेच्छा होते हुए भी फलेच्छा की कोटि में इसलिए नहीं मानी जाती कि यह इच्छा उपेय भगवान् से जुड़ी है । अत: यह नि:संकोच कहा जा सकेगा कि भगवान् श्रीकृष्ण से फलेच्छा रखने वाले भक्तों का योग भगवान् से ही होगा । यह निषिद्ध नहीं है, आचरणीय है । निष्कर्ष यह है कि कर्मफलमात्र चाहने वाले, फलप्राति तक भगवान् से प्रार्थना करने वाले वस्तुत: भगवान् को न चाहने वाले व्यक्तियों के लिए निष्काम कर्म करने का उपदेश है । भगवान् में श्रद्धा विश्वास के साथ-साथ फलेच्छा करने वाले व्यक्तियों के लिए वह उपदेश नहीं है । क्योंकि श्रद्धा और विश्वास के धनी भक्त तो भगवान् को ही मानते हैं सर्वस्व, कोई भी चीज क्यों न हो भगवान् से ही याचना करते हैं । उनको भगवान् के अतिरिक्त कोई बड़ा नहीं दीखता ।

प्रारम्भ से ही मेरी भगवान् श्रीकृष्ण और शास्त्र के प्रति अगाध श्रद्धा और आस्था रही है । मेरे पिताजी की यह अनुपम देन है । शुरु से गीता पढाई, आठ वर्ष की अवस्था में उपनयन संस्कार कराया, ९ वर्ष की अवस्था में नेपाल महीमण्डलाचार्य धर्म, संस्कृति, सभ्यता, भक्ति और प्रेम के ज्वलन्त सूर्य सदा प्रसन्न रहने वाले श्री १००८ श्रीभगवत्-शरणदेवाचार्यजी से निम्बार्कीय वैष्णव दीक्षा दिलाई । पूज्य श्रीमहा-राजजी की सन्निधि प्राप्त कर मुझ में दृढता आई । मुझ पर आचार्यों-सन्तों, विद्वानों की कृपा रही है ।

प्रकृत में इन्हीं आचार्यों सन्तों गुरुजनों के आशीर्वाद का फल यह **श्रीकृष्ण प्रार्थना शतक** है । यह अनुभूत अमोघ प्रयोग है । इसकी रचना पूर्ण होने के बाद मैंने यह संकल्प किया था कि इसको सबसे पहले अभिनव अनन्त श्रीविभूषित जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज को सुनाऊंगा । क्योंकि आद्यश्रीनिम्बार्काचार्य की श्रीराधाकृष्ण की प्रेमलक्षणा भक्ति और स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त को आज विश्वव्यापी बनाने का श्रेय महाराजश्री को ही है । यह सौभाग्य भी मैंने प्राप्त किया । महाराजश्री के कृपामय आशीर्वाद के साथ-साथ श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की ओर से ही इसका प्रकाशन कराने को कहा । इस उदारतामयी अनुपम कृपा की कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है ।

दूसरी बात्त इस शतक को मेरे विद्यागुरु राष्ट्रपति पुरस्कृत निरुपम श्रीकृष्ण भक्ति के उपासक श्रीवैद्यनाथजी झा को सुनाया । उन्होंने मुझे आशीर्वाद से अभिषिञ्चित किया ।

मेरे इस छोटे से जीवन में कई ऐसी दुरुह समस्याएं आई और धूर्तों द्वारा धम्की ही नहीं कायरता पूर्ण आघात करने की योजना बनाई । अपने स्वार्थ के लिए मेरी सरलता का दुरुपयोग किया । त्याग और सहिष्णुता और सहयोग के बदले क्षुद्र हृदय की साजिस खुलकर आई । परन्तु मेरे प्रभु मेरे प्राणनाथ, मेरे प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण ने हर परिस्थिति से मेरी रक्षा की । प्रभो ! मैं कृतज्ञ हूँ कृतार्थ हूँ भगवन् मैं आपकी शरण में हूँ । श्रीकृष्ण प्रार्थना शतक में प्रार्थना तो है ही । इसके साथ-साथ भगवान् श्रीकृष्ण का परात्परत्व, सर्वकारण-कारणत्व, सर्वव्यापकत्व, सर्वेश्वरत्व, सर्वनियन्तृत्व, सर्वाश्रयत्व, सर्ववादसमन्वयत्व, रसस्वरूपत्व, सर्वशक्त्याश्रयत्व, चेतनाचेतन सृष्टि प्रक्रियात्व आदि गुण शक्तियों का प्रतिपादन है और - **परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविक ज्ञान बलक्रियाश्च** इस श्रुति में गणित शक्तियों

के तत्कार्यों का निरूपण है । अर्थात् ब्रह्म क्या है, उससे सृष्टि कैसे हुई । अनेक प्रकार की सृष्टियों का मूल कारण क्या है । उसकी सृष्टि प्रविधि क्या है, इन बातों का विश्लेषण है । शतक की भाषा सरल है, जिसको थोड़ा सा भी संस्कृत का ज्ञान होगा, वह समझ सकता है । उसमें भी मैंने स्वयं हिन्दी रूपान्तर भी किया हैं इसके पाठ से साधकों को लाभ होगा । शतक के परिशिष्ट के रूप में **सूर्याष्टक** है यह भी अनुभूत अष्टक है । जो १२/३/७८ को बिना रफ किए सीधा लिखा गया था नजला की पीड़ा से मैं मुक्त हो गया था । **वृन्दावनस्वरूपम्, हनुमदष्टकम्, गंगा गौरवम्** भी अन्त में दिया है यह सब मेरा कुछ नहीं है आचार्यों की कृपा का फल है । पुनश्च मैंने इस ग्रन्थ के संशोधन, सम्पादन करने का भार हमारे सहृदय विशिष्ट विद्वान् श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय, प्राचार्य - श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, आचार्यपीठ-सलेमाबाद को सौंपा है, उनको मैं क्या दे सकता हूँ शिवाय सद्भाव के । आपने क्रमदीपिका के सम्पादन में ऐसा ही सहयोग दिया था । इस सहयोग को कभी भूल नहीं सकता ।

वशंवद--

हरिशरण उपाध्याय

* श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः *

अमोघ--

श्रीकृष्ण-प्रार्थना-शतकम्

कूर्मावतारो भगवान् सुरेन्द्रैः
संस्तूयमानः करुणागुणाब्धिः ।
सद्भक्तवाञ्छामणि कृष्णरूपः
श्रीगण्डकीजोऽवतु मां सदैव ॥१॥

मेरे आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण रूप कूर्म की देवताओं द्वारा सदा स्तुति की जाती है, श्रीकूर्म करुणासिन्धु हैं, धारिणी शक्ति धरित्री के अधिष्ठातृ देव हैं, सद्भक्तों की सदिच्छाओं को पूर्ण करने वाले चिन्तामणिरूप श्रीकृष्णस्वरूप हैं, श्रीकृष्णा गण्डकी नदी (नेपाल को पवित्र करने वाली) में प्राप्त होने वाले कलिपावनावतार अर्चाविग्रह-शालिग्राम के रूप में साक्षात् प्रकट भगवान् श्रीकूर्म मेरी सदैव रक्षा करें ॥१॥

पूर्ण प्रकाशेन्दुकलेव दिव्या
प्रेम प्रकर्षोज्ज्वलभावसाध्या ।
अनन्तशक्त्युद्गममूलधारा
बाधाहरा पातु सदैव राधा ॥२॥

मेरी आराध्य शक्ति श्रीराधा, पूर्णप्रकाश चन्द्रमा की देदीप्यमान कला के समान दिव्य हैं, प्रेम की प्रकर्षता से उदित

होने वाला जो उज्ज्वल भाव (मधुरभाव) है उससे ही साध्य हैं, और जो लक्ष्मी, सरस्वती आदि अनन्त शक्तियों की उद्गम धरा हैं, ऐसी भक्तों की सम्पूर्ण बाधाओं को हरण करने वाली भगवान् श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा मेरी सदैव रक्षा करें ॥२॥

यो योगिनां धारणयाप्यगम्यः
परेण भावेन हृदा द्रुतेन ।
प्राप्योऽञ्जसा भक्तमनोऽकूलः
स पातु सर्वेश्वर कृष्णचन्द्रः ॥३॥

जो योगियों के ध्यान धारणा आदि योग पद्धति रूप साधनों से भी अगम्य हैं, वे परम प्रेममयी भावना से जिनका चित्त पिघल गया है, ऐसी चित्तवृत्तियों से अपने भक्तों के मनोऽनुकूल रूप धारण करने वाले श्रीकृष्ण को सहज ही प्राप्त किया जा सकता है, ऐसे सर्वेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मेरी सदैव रक्षा करें ॥३॥

सृष्टिः समग्रापि यतः प्रवृत्ता
नियन्त्रिता स्वप्रकृतौ स्थितास्ति ।
स्वरूपतः श्रीवनकुञ्जमध्ये
विराजमाना वृषभानुजाऽव्यात् ॥४॥

चराचरात्मक सम्पूर्ण सृष्टि जिनसे उत्पन्न होकर, उनसे ही नियन्त्रित होती हुई अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार निर्दिष्ट कार्य नियमितरूप से करती रहती है, अपने कार्य से कभी विचलित नहीं होती । सृष्टि के कार्य श्रीराधा की शक्तियाँ सञ्चालित करती हैं तो वे स्वयं निजरूप से आह्लादिनी शक्ति के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण

के साथ श्रीधाम वृन्दावन की दिव्य निकुञ्ज में विराजमान होती हैं, ऐसी वृषभानुजा श्रीराधा मेरी सदैव रक्षा करें ॥४॥

आह्लादिनी शक्तिरनन्तशक्ते
राधा महाभावमयी मुरारेः ।
न शक्तितः शक्तिमतोऽस्ति भेदो
राधात्मकं कृष्णमहं स्मरामि ॥५॥

भगवान् श्रीकृष्ण की अनन्त शक्तियां हैं, उन अनन्त शक्तियों में महाभावस्वरूपा प्रेम की अधिष्ठातृ देवी श्रीराधा आह्लादिनी शक्ति हैं । शक्ति और शक्तिमान् में भेद नहीं होता जो राधा हैं वह कृष्ण हैं, जो कृष्ण हैं वह राधा हैं ऐसे राधास्वरूप श्रीकृष्ण का सदा स्मरण करता हूँ ॥५॥

श्रीकृष्ण ! सर्वेश्वर ! मानसं मे
श्रीमद्गुणाख्यानविधौ प्रसन्नम् ।
अतो भवद्दिव्यगुणानुवाद-
रहस्यमाख्यापयितुं प्रवृत्तम् ॥६॥

हे श्रीकृष्ण ! हे सर्वेश्वर ! मेरा मन आपके सौन्दर्य, माधुर्य, सौशील्य, कारुण्य आदि दिव्य गुणों तथा स्वरूप शक्तियों के वर्णन में प्रसन्न रहता है, इस प्रसन्नता का सदुपयोग करने के लिए आपके दिव्य स्वरूप के रहस्य को प्रकट करने के लिये प्रवृत्त हो रहा है ॥६॥

त्वमेव साक्षाद् भगवान् परात्मा
त्वं ब्रह्म हेतुर्जगतोऽखिलस्य ।

आनन्दसत्ताचिदनन्तशब्दै–
र्वाच्योऽसि साक्षाद्जगदन्तरात्मा ।।७ ।।

भगवन् ! आप भक्तों के लिए स्वयं भगवान् हैं, योगियों के लिए परमात्मा हैं, ज्ञानियों के लिए परब्रह्म हैं, और अखिल जगत् कारण हैं, आप आनन्द सत् चित् अनन्त शब्दों के वाच्य हैं, आपका स्वरूप ही सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म है । आप सर्वजगत् के अन्तरात्मा हैं ।।७ ।।

न त्वां विना वस्तु सदस्ति किञ्चित्
सर्वस्य सत्ता भवतो विभाति ।
आनन्दसच्चिन्मयरूप ! कृष्ण !
सदा शरण्य श्शरणागतानाम् ।।८ ।।

हे सच्चिदानन्दमय ! श्रीकृष्ण ! आपके विना किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं होता । आपके सदंश सें जगत् का अस्तित्व प्रतीत होता है, आपके सदंश और चिदंश के संमिश्रण से चेतन जीव हैं । आप सच्चिदानन्दमय स्वरूप है, और शरणागत भक्तों के संरक्षक हैं ।।८ ।।

हे नाथ ! सर्वा जगतोव्यवस्था
सम्पद्यते त्वद् रचनाऽवनादि ।
आसूर्यतारापशुभूसमुद्रा
नियन्त्रिता यन्नियमे वसन्ति ।।९ ।।

हे नाथ ! जगत् की सारी व्यवस्था, सृष्टि, स्थिति, लय, किंवा सर्वविध व्यवस्था आपसे ही सम्पन्न होती है । सूर्य, चन्द्र ग्रह

तारा, मानव दानव पशु-पक्षी, पृथिवी, समुद्र किंवा जगत् की समष्टि-व्यष्टि सम्पूर्ण प्रपञ्च आप द्वारा नियन्त्रित होकर, निर्धारित नियमों का संस्कारवशात् पालन करते हैं ॥९॥

त्वमेव वृन्दावनसंविहारी
त्वं द्वारिकाधीश उत व्रजेशः ।
त्वं भारतेशोऽखिलसंसृतीशो
ब्रह्माण्डगोलाधिपतिस्त्वमेव ॥१०॥

भगवन्! आप ही श्रीवृन्दावनविहारी हैं, आप ही द्वारिकाधीश और व्रजेश्वर हैं, आपही भारतेश्वर हैं तो सम्पूर्ण संसार के स्वामी हैं, आपही ब्रह्माण्डगोलाधिपति हैं ॥१०॥

कणे कणे त्वं वसुधातलस्य
कणे कणेऽपामनले त्वमेव ।
वायौ वियद्व्यापिनि चाम्बरे त्वं
त्वमेव सर्वत्र विभासि नाथ! ॥११॥

हे नाथ! आप ही पृथिवी के कण-कण में, जलतत्व की बूंद-बूंद में, अग्नि के परमाणु-परमाणु में, आकाशव्यापी वायु के अतिसूक्ष्म परामणु (ईश्वर) में और अनन्त आकाश में किंवा सर्वत्र अपने तेज से आपही व्याप्त हैं ॥११॥

व्याप्तोऽपि सर्वत्र सतां प्रभावाद्
वृन्दानिकुञ्जेष्वपि दर्शनीयः ।
सज्ज्ञानिनां तत्वपदाभिधेयः
श्रीकृष्ण! गोपीजनवल्लभस्त्वम् ॥१२॥

हे भगवान् श्रीकृष्ण ! आप सर्वत्र आकाशवत् व्यापक हैं, किन्तु सन्तों की साकार उपासना के प्रभाव से श्रीवृन्दावन की निकुञ्जों में भी आपका रूपमाधुर्य दर्शनीय होता है । और आप ज्ञानियों की दृष्टि में तत्व पद वाच्य अद्वितीय हैं तो प्रेमी व्रजाङ्गनाओं की दृष्टि में गोपीजनवल्लभ हैं ॥१२॥

तवेन्द्रियाणां नहि लौकिकत्वं
सर्वाणि सच्चिद्घनरूपकाणि ।
यथाग्रतो भासि तथैव पश्चात्
उपर्यधः सर्वत एकरूपः ॥१३॥

भगवन् । भावुक भक्तों की साकार उपासना में आपका जो सौन्दर्य माधुर्यपूर्ण सगुणस्वरूप दिखाई पड़ता है, उस दिव्यविग्रह में लौकिकत्व (भौतिकत्व) नहीं है, नाहीं साकार होने से अव्यापकत्व है । अर्थात् आपकी इन्द्रियां, आपका स्वरूप भौतिक नहीं है । सब दिव्य हैं, सच्चिद्घन हैं आनन्दमय हैं, अनन्त हैं व्यापक हैं । जैसे आप मुखारविन्द की ओर से दिखाई देते हैं, वैसे ही आगे पीछे, नीचे-ऊपर, सब ओर से मुखारविन्द का स्वरूप दिखाई देता है । आपके दिव्य स्वरूप में विभागीय अवयव नहीं हैं । सम्पूर्ण स्वरूप से सम्पूर्ण इन्द्रियों के काम होते हैं । आपका स्वरूप पिण्ड नहीं हैं, आनन्दमय चिद्घन है । साकार रूप में दिखाई पड़ने वाले आपके दिव्य विग्रह के मध्य से कोई पार होना चाहे तो निर्बाध पार हो सकता है, कोई व्यवधान नहीं है । इसीलिए तो शस्त्र-अस्त्रादि का प्रभाव नहीं पड़ता । यही कारण है कि आपके असंख्य उपासक और असंख्य शक्तिरूपा सहचरी गण, चारों ओर से दर्शन, स्पर्शन,

स्तुति, प्रार्थना और विभिन्न सेवाएं करते हैं, उनको यह अनुभव होता है कि भगवान् की मुसकान भरी दिव्य आकृति अपनी ओर ही है, यही आपकी दिव्यता चिदानन्दमयता, रसरूपता और व्यापकता है ॥१३॥

सदासि साकार उपासकानां
निराकृतिस्तत्त्वविदां तदैव ।
यथा यथा साधकभावनास्ति
तथा तथा त्वं प्रतिभासि कृष्ण ! ॥१४॥

हे श्रीकृष्ण ! जिस समय आप भावुक उपासकों की भावना में श्रीराधाकृष्ण युगल स्वरूप के रूप में साकार दिखाई देते हैं, उसी समय तत्त्ववेत्ता वेदान्तियों की धारणा में निर्विशेष निराकार ब्रह्मतत्व के रूप में अनुभूत होते हैं । जैसी जैसी साधकों की भावना होती है, आप वैसे वैसे ही बनते हैं, यही है आपकी सर्वस्वरूपता ॥१४॥

स्वाभाविके भेद उताप्यभेदे
वादे तु वस्तुस्थितितोऽन्वितोऽसि ।
अद्वैतवादे च तथैव भेद-
वादेऽपि सर्वात्मतया विभासि ॥१५॥

भगवन् ! आप श्रीनिम्बार्काचार्यजी के श्रुति सम्मत स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त में तो वस्तुस्थिति के रूप में समन्वित हैं, किन्तु श्रीशंकराचार्यजी के अद्वैतवाद तथा श्रीमध्वाचार्यजी के द्वैतवाद में भी आप सर्वात्मरूप से ही प्रकाशित होते हैं ॥१५॥

विशेषणाद्वैतमते च शुद्धा-
द्वैते तथान्येषु मतेषु नाथ ! ।
अचिन्त्यभेदाद्वयनामकेऽपि
त्वमेव साक्षादनुभूतिमेसि ॥१६॥

हे नाथ ! आप जैसे श्रीरामानुजाचार्यजी के विशिष्टाद्वैत-वाद में अनुभूत होते हैं वैसे ही श्रीवल्लभाचार्यजी के शुद्धाद्वैतवाद में समन्वित दीखते हैं । और आप जैसे श्रीचैतन्य महाप्रभु के अचिन्त्य भेदाभेदवाद में अनुभूतचर हैं वैसे ही सम्भावित अन्यान्य वादों मतों में भी समन्वित होंगे ही ॥१६॥

सर्वेऽपि वादास्त्वयि सङ्गताः स्यु-
र्विचारकाणां मुदमावहन्तः ।
केनापि वादेन विचारणीयो
यतो भवान् सर्वविचारमूलम् ॥१७॥

भगवन् ! आपके गुणानुवाद के सम्बन्ध में जितने भी शास्त्रीय वाद हैं वे सब के सब आपमें ही संगत (घटित) होते हैं, ये वाद मनीषियों के मन में आमोद भरने वाले होते हैं, आखिर क्यों न हो सम्पूर्ण वादों के विचारणीय तो आप ही हैं । सभी वादों के मूल में आप ही रहते हें ॥१७॥

समन्वयो वाथ विरोधभावो
वादो विवादः सकलं जगच्च ।
त्वदाश्रितत्वान्न विरोधमेति
सर्वाश्रयस्त्वं भगवन् ! प्रसीद ॥१८॥

भगवन् ! समन्वय हो या विरोध हो, वाद हो या विवाद हो, सम्पूर्ण जगत् ही क्यों न हो, सबके अधिष्ठान तो आप ही है । वाद विवादादि सभी आप तक पहुंचते पहुंचते समाप्त हो जाते हैं, सर्वाश्रय तो आप ही रहते हैं, प्रभो ! आप प्रसन्न हों ॥१८॥

अनेकतायामनुभासि चैक–
स्तथैकतायां त्वमनेकरूपः ।
अचिन्त्यरूपोऽसि जगन्निवास !
विरुद्धधर्माश्रयतोऽपि शुद्धः ॥१६॥

हे जगन्निवास ! आप प्रपञ्च की अनेकता में एक और आपकी एकता में अनेक प्रपञ्च दीखते हैं, आपका यह स्वरूप ही अचिन्त्य है, परस्पर विरुद्ध धर्माश्रय होते हुए भी, स्वरूपतः आप शुद्ध हैं ॥१६॥

निषेधशेषो भगवंस्त्वमेव–
मशेषरूपोऽपि भवाननन्तः ।
अशेषकल्याणगुणैकराशे !
सर्वं त्वमेवासि चराचरात्मा ॥२०॥

हे भगवन् ! अशेषकल्याण गुणनिधे ! जगत् प्रपञ्च के अस्तित्व का निषेध करते–करते जो शेष रह जाता है, जिसका निषेध हो ही नहीं सकता, उसको निषेध शेष कहा जाता है, ऐसे निषेध करने के बाद शेष रहने वाले शेष भगवान् ही आप हैं । और निषेध्य प्रपञ्च का स्वतः अस्तित्व न होने के कारण–आपके सदंश से ही जिसका अस्तित्व माना जाता है, अर्थात् सम्पूर्ण प्रपञ्च आपका

ही सदंशरूप होने के कारण अशेषरूप (सम्पूर्णरूप) भी आपको ही कहा जाता है, और आप अनन्त हैं, चराचरात्मा हैं ॥२०॥

भगवत् शक्ति विचार--

त्वच्छक्तयः सन्ति विभिन्नरूपाः
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाश्च ।
स्वाभाविकीशक्तिरनन्यसङ्गा
आह्लिदिनी नामधरास्ति राधा ॥२१॥

शक्ति विचार--

आप की स्वाभाविकी ज्ञान, बल, क्रिया आदि विभिन्न शक्तियां हैं उनमें जो स्वाभाविकी शक्ति हैं वह आपकी स्वरूपभूता आह्लादिनी शक्ति हैं, जिनको महाभाव स्वरूपा श्रीराधा कहा जाता है ॥२१॥

त्वज्ज्ञानशक्तेरपराभिधा तु
संविद् यया वेत्सि समग्रतोऽदः ।
पिपीलिका किं कुरुते विधाता
सर्वं हि हस्तामलकी-करोषि ॥२२॥

भगवन् ! आपकी ज्ञान शक्ति का दूसरा नाम संविद् शक्ति हैं, जिस संविद् शक्ति से आप अखिल ब्रह्माण्ड को समग्र रूप से एक ही काल में जानते हैं, चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त के प्राणी क्या कर रहे हैं, किस अवस्था में हैं, हस्तामलकवत् समस्त गतिविधियों को जानते हैं । इस बात को वेद वाक्य भी समर्थन करते हैं। **यः सर्वज्ञः सर्वविद्** आप सामान्य ज्ञान और विशेष ज्ञान के ही स्वरूप हैं ॥२२॥

तज्ज्ञानशक्तेरपरस्वरूपं
जीवात्मनाम्ना जगति प्रसिद्धम् ।
ज्ञानस्वरूपोऽथच बोधधर्मी
ह्यनन्तसीमः परिमाणतोऽणुः ॥२३॥

भगवन् ! आपकी उस ज्ञान शक्ति का दूसरा स्वरूप वह है जो जगत् में शक्तिरूप अंश के रूप में जीवात्मा नाम से प्रसिद्ध है । यह जीवात्मा ज्ञानस्वरूप, ज्ञानधर्मी, परिमाण में अणु, संख्यातीत होने के कारण अनन्त है । इसी का नाम चेतन जीव है ॥२३॥

विशेषः-उपर्युक्त स्थापना के सम्बन्ध में निम्न प्रमाण ज्ञेय है ।

(क) **अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।**
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

(गीता ७-५)

(ख) **ममैवांशो जीवलोके'जीवभूतः सनातनः ।**

(ग) **....अयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञान घन एव ।**

(घ) **अणुर्ह्येष आत्मा चेतसा वेदितव्यः ।**

(क) आठ प्रकार की प्रकृति की गणना के बाद परा प्रकृति का स्वरूप भगवान् ने बताया, जिसको जीवात्मा कहा जाता है ।

(ख) प्रत्येक देह में विद्यमान जो चेतन जीव है, वह मेरा ही शक्तिरूप अंश है ।

(ग) यह जीवात्मा भीतर बाहर सर्वत्र प्रज्ञानघन, ज्ञानस्वरूप है ।

(घ) यह जीवात्मा परिमाण में अणु है। श्रीनिम्बार्काचार्यजी ने जीवात्मा की परिभाषा करते हुए एक ही श्लोक में सब कुछ कहा है।

ज्ञानस्वरूपञ्च हरेरधीनं
शरीर संयोगवियोगयोग्यम् ।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं
ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः ॥

बलाभिधा शक्तिरनन्तजीवान्
संस्कारबीजैः सह योजयन्ती ।
सञ्चालयन्त्यण्डमिदं दधाति
बलात्मिका शक्तिरति प्रसिद्धा ॥२४॥

बलापरनामासन्धिनीशक्ति के कार्य--

भगवान् आपकी बल नाम की शक्ति जिसको सन्धिनी शक्ति कहा जाता है, वह जीवों को पूर्व सञ्चित संस्काररूप बीजों से संयुक्त करती है । उन्हीं संस्कारों के अनुरूप जीवों की जीवनचर्या निर्धारित करती हुई अपने बल पर ब्रह्माण्ड को भी धारण करती है । इसी के बल पर ब्रह्माण्ड गोल टिका है, यह अति प्रसिद्ध शक्ति है ॥२४॥

क्रियाभिधा शक्ति रनन्त बीजा
ब्रह्माण्डगोलात्मतया चकास्ति ।
विक्षेपशक्तेः परिणामरूपं
जगत् समग्रं भगवाँस्तु शुद्धः ॥२५॥

विक्षेप शक्ति का कार्य:-

भगवन् ! आपकी क्रिया नाम की शक्तिजिसका दूसरा नाम विक्षेप शक्ति है । यह दृश्यमान सम्पूर्ण चराचरात्मक संसार की बीजरूपा है । अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों के सूक्ष्मकण उसमें विद्यमान

हैं वह मूल प्रकृति, महत्, अहं, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी आदि की मात्राओं सहित विशाल ब्रह्माण्ड के रूप में परिणत होती है । आपकी विक्षेप शक्ति का परिणाम ही ब्रह्माण्ड है । आपका स्वरूपतः परिणाम न होने के कारण आप सदा विशुद्ध स्वरूप हैं ॥२५॥

यथा पयो याति दधिस्वरूपं
तथा क्रियाशक्तिरभूत्प्रपञ्चः ।
त्वदीयशक्तेः परिणाम एष
सर्वं खलु ब्रह्म पदेन वाच्यः ॥२६॥

भगवन् ! जैसे दूध का परिणाम दही होता है, अर्थात् दूध स्वरूपतः दही के रूप में परिणत होता है । वैसे ही आपकी क्रियानामक विक्षेप शक्ति भी स्वरूपतः ब्रह्माण्ड के रूप में परिणत होती है । क्योंकि ब्रह्माण्ड के निर्माण हेतु अपेक्षित सम्पूर्ण सूक्ष्म बीज विक्षेप शक्ति में ही विद्यमान हैं । अतः जगत् प्रपञ्च, विक्षेप शक्ति के परिणाम होने के नाते **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** इस वेद वाक्य का वाच्य होता है ॥२६॥

तत्वों के रूप में विक्षेप शक्ति का परिणाम-

हे नाथ ! विक्षेपमयी च शक्ति-
राकाशरूपं भजते स शब्दम् ।
ततोऽनिलत्वं हि पुनश्च तेजः-
स्वरूपतां याति गुणेन साकम् ॥२७॥

हे नाथ ! आपकी वह विक्षेप शक्ति, सर्वप्रथम शब्दगुण के सहित आकाश के रूप में परिणत होती है, उसके बाद स्पर्शगुण के सहित वायु के रूप में, पुनः रूप गुण के साथ तेज के रूप में परिणत होती है ॥२७॥

गुणेन साकं जलरूपमेति
　　शक्तिः पुनर्भूमिमयीं सगन्धाम् ।
इत्थं जगद्व्यक्तमभूद्विशालं
　　चराचराणां स्थितयेऽभयेन ॥२८॥

भगवन् ! आपकी वह शक्ति, रसतन्मात्रारूप गुण के सहित जल रूप में, और गन्धरूप के साथ पृथिवी के रूप में परिणत होती है । इस प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये गुण क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी के विशेष गुण है । कारण के गुण कार्य में आते हैं आकाश में केवल शब्द ही रहता है । वायु में शब्द और स्पर्श रहते हैं । इसी प्रकार तेज में शब्द, स्पर्श, रूप, जल में शब्द स्पर्श रूप रस, और पृथिवी में शब्द स्पर्श रूप रस गंन्ध गुण रहते हैं । इस प्रकार यह विशाल ब्रह्माण्ड व्यक्त हुआ, जो चराचर को अभय पूर्वक रहने का स्थान माना जाता है ॥२८॥

सूक्ष्मासु मात्रासु च सर्व बीजा-
　　न्यन्तर्गतान्येव समुद्भवन्ति ।
खाद्यानि पेयान्युपयोगवस्तू-
　　न्यन्यानि रत्नानि धनानि भानि ॥२९॥

भगवन् ! इस ब्रह्माण्ड में उपलब्ध होने वाले सम्पूर्ण पदार्थों के परमाणुकल्प सूक्ष्म बीज, पञ्चतन्मात्राओं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धों में पहले से विद्यमान हैं । वहीं से विभिन्न प्रकार के खाद्यान्न, पेय पदार्थ, परिधान, जीवन के लिए उपयुक्त सामग्री, सुवर्ण, मुक्ता, हीरक, रजत, लौह, ताम्र, पीतल, कांस्य, अन्य विशिष्ट रत्न, धन-धान्य, ग्रह-नक्षत्र, तारे-सितारे, खगोल-भूगोल की सारी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं । यह सब पञ्चतन्मात्राओं का विशाल विलास है । यही बीजमूलक विकास है । इसी को सत्कार्यवाद भी कहा जाता है ॥२९॥

चेतन विकास की विधा-

ज्ञानाख्यशक्तिर्मनुजस्य मूलं
चतुर्मुखत्वं भजते ततो वै ।
सबीजदेहान्मनसश्च तस्य
जाता मरीच्यादय आसनत्काः ॥३०॥

भगवन् ! आपकी ज्ञान शक्ति की दो विधाएँ हैं, एक आपकी स्वरूपभूत ज्ञान, दूसरी विधा है चेतन जीव । इसका मूल स्वरूप चतुर्मुख है, मन बुद्धि, चित्त, अहंकार ये चार मुख हैं, ये ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय के साधक हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद के रहस्यों का उद्घाटन इनसे ही होता है । इस चतुर्मुख को समष्टिबोध या ब्रह्मा भी कहा जाता है । यही महाभाव है, वर्तमान मानव जाति का मूल है । इस समष्टि बोध रूप ब्रह्मा का शरीर और मन सबीज हैं । अर्थात् सभी प्राणियों के अतिसूक्ष्म संस्कारात्मकबीज, ब्रह्मा के शरीर और मन में पहले से

ही विद्यमान हैं । अतः ब्रह्मा के संकल्प मात्र से सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार प्रकट हुए । इनको मानस पुत्र कहा जाता है । इसके बाद समष्टि बोध के विभिन्न सबीज अंगों से रुद्र, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष, कर्दम, नारद ये अयोनिज महाभाव उत्पन्न हुए । ज्ञान चाहे जिस रूप में भी प्रकट हो सकता है, इस सम्न्ध में ब्रह्मा की अव्यर्थ संकल्प शक्ति ही नियामक है । सबीज मन और सबीज शरीर कारण है ॥३०॥

स एव धाता मनुजाकृतिः सन्
द्विधा स्वमात्मानमसौ व्यधत्त ।
एकोऽभवत् पूरुषरूपभर्ता
तदन्यतः स्त्री शतरूपिकाऽभूत् ॥३१॥

इसके बाद विधाता ब्रह्मा ने मनुष्य की आकृति में परिणत होकर अपने शरीर को दो रूपों में विभक्त किया । उनमें से एक पुरुष रूपधारी पति हुआ । दूसरा अंग स्त्री के रूप में पत्नी हुआ । इस अंग विभाजन में भी उस ज्ञानशक्तिरूप ब्रह्मा का अव्यर्थ संकल्प ही नियामक है । अर्थात् शरीर को दो भागों में विभक्त करने से पूर्व उसका संकल्प यह था कि एक अंग पति होगा, दूसरा अंग स्त्री पत्नी । अतः एकाङ्ग से उत्पन्न होने पर भी पति–पत्नी होने में कोई दोष नहीं होता । संकल्पबलात् यह संग निर्दुष्ट माना जायेगा । इन्हीं से मानव जाति की सृष्टि हुई । पुराण की भाषा में पुरुष अंग को मनु, स्त्री अंग को शतरुपा कहा जाता है ॥३१॥

सृष्टिं समग्रां प्रविधातुकामा
जात्यन्तरे सा परिणाममेति ।

मनुस्तथारूपधरो हि भूत्वा
सृष्टिं व्यधत्तां क्रमशः समस्ताम् ॥३२॥

भगवन् ! समग्र सृष्टि की कामना करने वाली शतरूपा जिसको असंख्य रूपा भी कहा जा सकता है, मानव जाति की उत्पत्ति के बाद प्राण्यन्तर की स्त्री के रूप में परिणत होती गई, वह पुरुष जिसको मनु कहा जाता है वह भी शतरूपा जिस प्राणी की स्त्री के रूप में परिणत होती दीखती, उसी प्राणी के पुरुष के रूप में परिणत होता जाता । इस क्रम से पीपिलिका से ब्रह्मा पर्यन्त समस्त प्राणियों की सृष्टि हुई । इस प्राणिसृष्टि विज्ञान को विस्तार से समझने के लिए **वृहदारण्यकोपनिषद्** देख लेनी चाहिए ॥३२॥

ब्रह्माण्डमेतद् भवतः स्वरूपं
ज्ञानक्रियाशक्तिबलप्रसूतम् ।
पाताललोकावधि सत्यलोक-
स्त्वदीय शक्तेः परिणाम एषः ॥३३॥

भगवन् ! आपकी ज्ञान शक्ति का अंश चेतन जीव समूह है । क्रिया (विक्षेप) शक्ति का परिणाम स्थावर जंगम रूप संसार है । आपकी बल नाम की शक्ति के बल पर यह संसार टिका है । यही धारिणी, पालिनी सन्धिनी शक्ति के रूप में जीवात्माओं को स्वस्व संस्कार अनुरूप विभिन्न प्राणी के रूप में जन्म कर्म से जोड़ती हुई धारण पोषण की व्यवस्था करती है । इस प्रकार पाताल लोक से लेकर सत्यलोक पर्यन्त की समष्टि-व्यष्टि, जिसका नाम ब्रह्माण्ड है, यह सब आपकी शक्तियों का परिणाम विशेष है किंवा आपका ही स्वरूप है ॥३३॥

गोलाकृतिं भूमिमिमां वदन्ति
व्यासादयो भौतिक वादिनोऽपि ।
कस्मिन् स्थितेयं पृथिवी तथापः
श्रीकृष्ण ! ते कर्षणशक्तिमेरौ ॥३४॥

हे श्रीकृष्ण ! ये ब्रह्माण्ड गोलाकार है, यह कथन व्यासादि महर्षियों तथा भौतिक वादी वैज्ञानिकों का है । इस सम्बन्ध में मतभेद नहीं है । विचारणीय तो यह है कि पृथिवी और जल का टिकने का आधार क्या है । इस पर व्यास प्रभृति अध्यात्मवादियों का कहना है कि भगवान् श्रीकृष्ण में जो आकर्षण शक्ति है, उसी शक्तिरूप मेरु (धुरी) पर ब्रह्माण्ड गोल टिका है । इसी को वैज्ञानिक लोग, वस्तुगत स्वभाव शक्ति के कर्षण प्रत्याकर्षण क्रिया के आधार पर ब्रह्माण्ड टिका है, ऐसा कहते हैं । शक्ति के मूल स्थल तो आप हैं आपकी शक्ति ही वस्तुगत होती है ॥३४॥

स्वभावमूलं जगदस्ति केचिद्
वदन्ति तत् तिष्ठति वस्तुशक्त्या ।
कुतो हि त द्वस्तु च कः स्वभावः
सर्वस्य मूलं भगवन् ! त्वमेव ॥३५॥

भगवन् ! कुछ लोग तो कहते हैं कि जगत् का मूल कारण स्वभाव है । वस्तुगत शक्ति से ही जगत् सृष्ट हुआ है और टिक रहा है । इस पर प्रष्टव्य है कि स्वभाव है क्या, वस्तु कहां से आई । स्वभाव चेतन है कि अचेतन, किसी पर आश्रित है कि स्वतन्त्र ? इसकी परिभाषा ही नहीं है । अतः कहना पड़ेगा कि भगवान् की शक्ति का नाम स्वभाव है । सबके मूल आप ही हैं ॥३५॥

ब्रह्माण्डगोलं परितः किमस्ति
किञ्चिद्विदः प्राहुरनन्तशून्यम् ।
न केवलं शून्यमिदं परावाग्
वाच्यो भवानस्ति महानन्तः ॥३६॥

भगवन् ! लोग कल्पना करते हैं कि ब्रह्माण्ड की चारों दिशा में नीचे से उपर पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण में क्या है ? कुछ-कुछ जानने वाले कहते हैं कि वहां तो अनन्त शून्यमात्र है । किन्तु वहां शून्य (आकाश) मात्र नहीं हैं, वहां तो परावाक् वाच्य (ॐ कार वाच्य) अनन्तरूप भगवान् हैं । **ओंमित्येकाक्षरं ब्रह्म, नमोऽस्त्वनन्ताय, तदनन्तासनो हरिः** ॐ कार ही ब्रह्म है । उस अनन्त को नमस्कार है । अनन्त आकाश ही जिनका आसन है, उनको हरि कहा जाता है ॥३६॥

आध्यात्मिको वा भवतूत भूत-
वादी भवेत् सर्वजनेन मान्यः ।
अहेतुरेकोऽस्ति स सर्वहेतुः
न त्वां विना किञ्चन वस्तु तादृक् ॥३७॥

भगवन् ! अध्यात्मवादी हो या भौतिकवादी हो, सभी यह मानना बाध्य हैं कि एक ऐसी वस्तु है जो सर्वपदार्थ का हेतु हो, स्वयं वह अहेतुक हो । यदि ऐसा नहीं माना जाएगा तो अनवस्था दोष होगा । कल्पना कीजिए कि भृगु के पिता ब्रह्मा हैं, ब्रह्मा के पिता विष्णु हैं, विष्णु के पिता सद् नामक ब्रह्म हैं, ब्रह्म के पिता कौन हैं तो ब्रह्म के पिता हैं इस धारा का अन्त ही नहीं होगा । इसी को **अनवस्था** कहा जाता है । इसलिए सभी को यह मानना आवश्यक है कि एक

वस्तु ऐसी है जो वही सब कुछ है, वह सबका कारण है, स्वयं वह अकारण है । भगवन् ! आपको छोड़कर कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो सब कुछ बने अतः आप ही सब कुछ हैं ॥३७॥

एतावता सिद्धमभूदनन्त !
जगद् भवच्छक्तिमयं समस्तम् ।
अतः प्रभो ! सर्वजगन्निवासं
त्वामेव साक्षाच्छरणं प्रपद्ये ॥३८॥

हे अनन्त ! यहां तक के विचार से सिद्ध हो गया कि सारा संसार आपकी शक्ति का परिणाम विशेष है । प्रभो ! आपही जगत् का निवास स्थान हैं । अर्थात् आप सर्वव्यापक हैं, अतः मैं आपकी शरण लेता हूँ ॥३८॥

कुब्जेश्वरः सन् जगदीश्वरोऽसि
प्रेमप्रकर्षोज्ज्वलभाववृत्तौ ।
आभासि माधुर्यगुणाभिरामो
मतिर्न मे वर्णयितुं समर्था ॥३९॥

भगवन् ! आप एक ओर श्रीधाम वृन्दावन की दिव्य निकुञ्जों के अधीश्वर हैं तो दूसरी ओर आप जगन्नियन्ता जगदीश्वर हैं । जिन रसिकों की चित्तवृत्ति, प्रेमातिरेक से भरपूर, माधुर्यामृत से पूर्ण है, उन भावुकों के लिए तो आप माधुर्यभाव के आस्वाद्य बन कर प्रकट होते हैं । परदर्शी मनीषियों की दृष्टि में आप जगदीश्वर हैं । ऐसे सर्वस्वरूप प्रभु के गुणशक्ति वर्णन में मेरी बुद्धि समर्थ नहीं हैं ॥३९॥

एकान्तसत्यं भगवन्निदं तु
त्वं दुर्लभो भौतिक धारणातः ।
भावे भवान् भात्यनुभूतिराज्ये
भावो हि साकारतयाविरास्ते ॥४०॥

भगवन् ! यह तो एकान्त सत्य है कि आप भौतिक धारणा वालों के लिए तो अत्यन्त दुर्लभ हैं । किन्तु आप अनुभूति के भाव-राज्य में प्रतिभासित होते हैं । अतः आप भक्तों के भाव अनुकूल साकार बनकर प्रकट होते हैं ॥४०॥

शान्ते रसे तत्त्वतया विभासि
सख्ये सखा स्वामितयानुदास्ये ।
वात्सल्यभावे किल वत्सलोऽसि
माधुर्यभावे मधुरस्वरूपः ॥४१॥

भगवन् ! आप शान्तभाव से उपासना करने वाले साधकों के लिए निर्विशेष ब्रह्म के रूप में विभासित होतेहैं । सख्यभाव से उपासना करने वालों के लिए सखा के रूप में, दास्यभाव वालों के लिए स्वामी के रूप में, वात्सल्यभाव से उपासना करने वालों के लिए प्रिय पुत्र के रूप में, माधुर्यभाव से उपासना करने वालों के लिए निरतिशय माधुर्य के रूप में अनुभूत होते हैं ॥४१॥

यथारुचि त्वां रसिका भजन्ति
मग्ना भवन्तो भवतोऽनुभूतौ ।
तथा त्वमन्तः करणेषु तेषां
स्फुरन् सदानन्दयसि प्रसन्नः ॥४२॥

भगवन्! रसिक साधकजन अपनी-अपनी रुचि अनुसार आपकी लोकोत्तर मधुर स्वरूपानुभूति में मग्न होकर भावना करते हैं । आप भी उन रसिकों की भावना अनुरूप उनके अन्तःकरण में स्फुरित होकर प्रसन्नता से निरवधि आनन्द प्रदान करते हैं ॥४२॥

रसो भवान् कृष्ण ! रसस्वरूपा
राधा तथाराधनतत्पराश्च ।
रसे निमग्ना रसरूपतां ते
प्राप्ता भवन्त्याशु रसानुभूत्या ॥४३॥

हे श्रीकृष्ण! आप रस स्वरूप हैं । आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा भी रस स्वरूप हैं । ऐसे रसमय युगल की आराधना में तत्पर भावुक जनों को भी भावना से रसमय होना आवश्यक है । इस प्रकार रसस्वरूप युगल की दिव्यानुभूति से रससिन्धु में ही निमग्न होने वाले साधक भी शीघ्र ही रसस्वरूपता को प्राप्त होते हैं ॥४३॥

रसात्मकं नाम रसो हि धाम
उपासना दिव्यरसात्मिकास्ति ।
रसावुपास्यौ वृषभानुजेशौ
उपासको दिव्यरसानुभूतिः ॥४४॥

भगवन्! आपका श्रीकृष्ण नाम कितना रसमय है कहा नहीं जा सकता । आपका धाम श्रीवृन्दावन भी रसमय ही है । उपासना पद्धति भी दिव्य रस पूर्ण है । हमारे उपास्य देव श्रीराधाकृष्ण युगल सरकार का तो कहना ही क्या है वे तो दिव्यरस

ही है । नाम-नामी धाम-धामी साध्य-साधन जब रसमय हैं तो साधक को भी दिव्य रसमय बनना पड़ेगा ॥४४॥

श्रीकृष्ण ! कूर्मो भगवान् भवांस्तु
संरक्षकः सत्फलदो मदीयः ।
आतङ्कतो दुष्टजन प्रयुक्ता-
दरक्ष आराध्य ! सदा स्मरामि ॥४५॥

हे आराध्य श्रीकृष्ण ! आप ही मेरे संरक्षक और शुभफल देने वाले भगवान् कूर्म हैं । हे नाथ ! दुष्टों द्वारा वार-वार किये गए आतङ्कों से सदैव मेरी रक्षा की है । इन घटनाओं की स्मृति से आपका ही स्मरण होता है आप ही मेरे शरण्य हैं ॥४५॥

सर्वेश्वर ! श्रीश ! दयानिधान !
गोविन्द ! दामोदर ! वासुदेव ! ।
सङ्कर्षण ! श्रीहनुमन् ! खगेश !
मां सर्वतः पाहि हरे ! विपत्तेः ॥४६॥

हे सर्वेश्वर ! हे लक्ष्मीपते, हे दयानिधान ! हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे वासुदेव ! हे संकर्षण ! हे हनुमन् ! हे खगेश ! मेरी सब ओर से सभी प्रकार की विपत्ति से सदा रक्षा करें ॥४६॥

हे राम ! हे सूर्य ! अनन्त ! ईश !
नृसिंह ! धन्वन्तरिदेव ! मत्स्य ! ।
हे कृष्ण ! हे कूर्म ! वराह ! हंस !
मां सर्वतः पाहि हरे ! विपत्तेः ॥४७॥

हे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ! हे सूर्यनारायण ! हे अनन्त ! हे महेश ! हे नृसिंह ! हे धन्वन्तरिदेव ! हे श्रीकृष्ण ! हे कूर्म ! हे वराह ! हे हंस ! हे हरे ! आप मेरी सब ओर से सब प्रकार की विपत्तियों से रक्षा करें ॥४७॥

प्रभो ! इदानीञ्च रुजामनेकै
रक्तप्रकर्षादिभिरावृतोऽस्मि ।
श्रीमत्सुधावर्षिकृपारसेन
स्वस्थो भवेयं प्रभुमर्थयामि ॥४८॥

प्रभो ! इस समय तो मैं रक्तचाप आदि अनेक रोगों से पीड़ित हूँ, अतः आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आपकी पीयुष वर्षिणी कृपा दृष्टि से स्वस्थ हो जाऊँ ॥४८॥

श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! सदाच्युतोऽसि
अनन्त आनन्दमयस्त्वमेव ।
धन्वन्तरी रोगहरो हरिस्त्वं
तस्मादहं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥४६॥

हे श्रीकृष्ण ! हे गोविन्द ! हे अच्युत ! आप सदा अच्युत ही रहते हैं । हे अनन्त ! आप आनन्दमय है, आप ही रोगों को हरण करने वाले भगवान् धन्वन्तरि हैं इसलिए मैं आपकी शरण आया हूँ ॥४६॥

विशेष-

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारणभेषजात्
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

यह आयुर्वेद शास्त्र के प्रवर्त्तक भगवान् धन्वन्तरि द्वारा अनुभूत अमोघ मन्त्र है । अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः कहकर औषधि सेवन करना चाहिए । किंवा औषधि के अभाव में औषधि रूप इन नामों को उच्चारण करते रहना चाहिए ।

हे अच्युत ! श्रीपतिदेव ! विष्णो !
त्वं केशवो हंस उदात्तरूपः ।
नारायणः सत्यमथो हरिश्च
जनार्दन ! त्वां शरणं प्रपद्ये ॥५०॥

हे अच्युत ! हे श्रीपतिदेव ! हे विष्णो ! आप केशव है, उज्ज्वल स्वरूप हंस भगवान् हैं । आप ही नारायण, सत्य, हरि है, हे जनार्दन ! मैं आपकी शरण पड़ता हूँ ॥५०॥

विशेष-

इस श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण के वे आठ नाम हैं जो दरिद्रता, शत्रु, दुःस्वप्न को नाश करने वाले हैं ।

अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम् ।
हंसं नारायणश्चैव ह्येतन्नामाष्टकं पठेत् ॥
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं दारिद्र्यं तस्य नश्यति ।
शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःस्वप्नः शुभदो भवेत् ॥

श्रीकृष्ण ! राधाहृदये विभासि
आह्लादिनी ते हृदये चकास्ति ।
हे शक्तिमन् ! भक्तजनोपकारिन् !
आरोग्यमावर्द्धय दुष्टतोऽव ॥५१॥

हे श्रीकृष्ण ! आप आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा के हृदय में विभासित होते हैं तो आपके हृदय में आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा प्रकाशित होती हैं । हे शक्तिमन् ! इसलिए आप शक्तिमान् हैं, भक्त-जनोपकारी हैं । अर्थात् आप दोनों शक्ति, शक्तिमान् के रूप में एक ही हैं । भगवन् ! आप मुझे आरोग्य प्रदान करें, और दुष्टों से सदैव रक्षा करें ॥५१॥

रोगस्तु देहेन्द्रियमुख्यदोषो
भोग्योऽगदेनैव निवारणीयः ।
कथन्नु मामर्थयसीति वक्तुं
न शक्यते वै भवता कदापि ॥५२॥

हे प्रभो ! आप कहेंगे कि रोग देह इन्द्रियों के मुख्य दोष माने जाते हैं, ये तो भोगने पड़ेंगे । इन बाह्य विकारों का निवारण तो औषधोपचार से करना चाहिए । फिर तुम मुझसे आरोग्य प्राप्ति हेतु प्रार्थना क्यों करते हो ? सो भगवान् आप करुणालय हैं ऐसा आप कदापि नहीं कह सकते क्योंकि ॥५२॥

त्वमौषधं त्वं हि रसायनञ्च
धन्वन्तरिस्त्वं घटधृक् सुधायाः ।
आयुः प्रदाता परमेश्वरस्त्वं
त्वदाश्रयं सर्वजगद्विधानम् ॥५३॥

भगवन् ! आप ही सामान्य औषध हैं और आप ही रसायन नामक स्वर्णभस्मादि विशेष औषध भी है । सुधाकलश को धारण करने वाले धन्वन्तरि भी आप हैं । इतना ही नहीं, आप आयु प्रदान

करने वाले परमेश्वर हैं किंवा संसार की सब विधाएँ आप पर आश्रित हैं ॥५३॥

विषप्रभावश्च रिपुप्रभावः
षड्यन्त्र तन्त्रादिक कुप्रभावः ।
तेषां प्रभावो नहि ते समक्षं
तस्माद्भवन्तं मुहुरर्थयामि ॥५४॥

हे नाथ ! विष का प्रभाव, शत्रु का प्रभाव, षड्यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र आदि का प्रभाव आपके समक्ष पड़ ही नहीं सकता । इसलिए तो मैं आपसे वार-वार प्रार्थना कर रहा हूँ कि आपकी सुधामयी कृपा मुझ पर हो ॥५४॥

संस्कारतो भोग्य इतीरणेन
गतार्थता नास्ति कृपानिधान ।
कस्य प्रभावो भवतः समक्षं
स्थातुं क्षमः स्याद् भगवन् ! प्रसीद ॥५५॥

हे कृपानिधान ! आप कहेंगे कि रोग आधि-व्याधि भय, क्लेश तो जीवों के पूर्व संस्कारों से आते हैं, उनको तो भोगना ही पड़ेगा । परन्तु भगवन् ! इस कथन से गतार्थता नहीं होगी । क्योंकि आपसे अधिक प्रभावशाली जीवों के पूर्व संस्कार नहीं हो सकते । संसार में कौनसी ऐसी वस्तु है जिसका प्रभाव आपके समक्ष टिक सके । आप तो जगदीश्वर हैं, आप प्रसन्न रहें इसी में सब का कल्याण है ॥५५॥

स्वस्थेन कायेन मनोवचोभ्या-
मुत्साहतस्ते भजने प्रवृत्तिः ।
अस्वस्थतायां नहि चित्तवृत्तिः
प्रवर्तते स्वास्थ्यमतः समीहे ॥५६॥

भगवन् ! यदि शरीर स्वस्थ हो तो मन और वचन की स्वस्थता रहती हैं, शरीर मन, वचन की स्वस्थता होने पर आपके भजन साधन में उत्साह पूर्वक प्रवृत्ति होती है । शरीर के स्वस्थ न रहने पर तद्विषयक उद्विग्नता से भजन साधन की ओर प्रवृत्ति नहीं हो पाती। अतः आपसे स्वास्थ्य लाभ की याचना कर रहा हूँ ॥५६॥

शरीररोगेण मनोऽपिरुग्णं
तथेन्द्रियाणीव रुजान्वितानि ।
भवन्ति हे नाथ ! त्वदाश्रयाणां
कदापि रोगा न भवन्तु देव ॥५७॥

हे नाथ ! शरीर में रोग होने पर मन तथा इन्द्रियां भी रुग्ण हो जाती हैं, निरुत्साहित होती हैं । इस कारण से आपके भजन साधन में बाधा उपस्थित होती है । हे देव मेरी आपसे प्रार्थना है कि आपकी शरण में आने वाले भक्तों को कभी रोग न हों ॥५७॥

याच्ञा त्वियं निम्नतरा न वाच्या
केनापि भावेन भवत्स्मृतिः स्यात् ।
आर्तोऽथवा ज्ञातुमना धनार्थी
ज्ञानी च सर्वे भवतो हि भक्ताः ॥५८॥

भगवन्! यह मेरी आरोग्य याचना निम्न कोटि की नहीं है । किसी भी रूप से आपसे सम्बन्ध जोड़ कर आपका स्मरण किया जाना उचित है । आर्त हो चाहे जिज्ञासु हो, धनार्थी हो चाहे ज्ञानी हो, सभी आपके भक्त है । क्योंकि याचना के बहाने आपसे ही सम्बन्ध जोड़ते हैं ।।५८।।

विशेष--

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।

भगवन्! आप ने ही तो कहा है कि आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी ये चार प्रकार के सुकृतिजन मुझको ही भजते हैं अतः ये सभी आपके ही भक्त हैं ।

केनापि भावेन भवन्तमेव
भजेत्स मन्ये भवदीयभक्तः ।
आराधनीयोऽपि कयापिरीत्या
भक्त्याऽथवा भावनयाऽतथैव ।।५९।।

भगवन्! जो व्यक्ति किसी भी भाव से आपको ही भजता है तो मैं मानता हूँ कि वह आपका परम भक्त है । किसी भी रीति से भक्ति से हो या मेरी जैसी कामना से हो एकमात्र आप ही आराध-नीयं है ।।५९।।

वेदाः प्रमाणं भवदर्थनार्थं
सर्वाणि पापानि परासुवाऽऽशु ।

भद्रञ्च य द्भस्तु तदेव देहि
श्रुतेरिमं सारमनु व्रजामि ॥६०॥

भगवन्! आपसे प्रार्थना करने के सम्बन्ध में आपके ही निःश्वास भूत वेद प्रमाण हैं । वेद में कहा है कि हे भगवन्! हमारे दुष्कर्मरूप पाप शीघ्र हटाइए, जो कल्याण प्रद वस्तु हो, वह हमें दीजिए ।

.........दुरितानि परासुव
........यद्भद्रं तन्न आसुव

वेद के सिद्धान्त भूत इसी सार का मैं अनुसरण कर रहा हूँ ॥६०॥

त्वत्प्रार्थने यो महिमास्ति शास्त्रे
न सोऽर्थवादो न कपोलकल्प्यः ।
वस्तुस्थितिः सा भगवन्! त्वदीया
मनोऽपि मे तं मनुते यथार्थम् ॥६१॥

हे भगवन्! आपकी प्रार्थना के सम्बन्ध में शास्त्रों में जो महिमा बताई गई है, वह सत्य है । न वह अर्थवाद है, न वह मनगढन्त कल्पना है । आपकी वस्तुस्थिति ही वैसी है । मेरा मन भी प्रार्थना को यथार्थ मानता है ॥६१॥

विशेष--

रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥

भगवन्! आपके सहस्रनाम । विष्णुसहस्रनाम की फल स्तुति में कहा है कि सहस्र नामों से आपकी प्रार्थना करने वाला

साधक हर परिस्थितियों, रोग, बन्धन, भय और आपत्तियों से मुक्त हो जाता है ।

शास्त्रं तु सत्यं नहि तद्विवाद-
स्तथाऽपि सत्यापयितुं समीहे ।
भूतात्मवादिष्वपि सत्यतायाः
रूपं परं दर्शयितुं क्षमः स्याम् ॥६२॥

भगवन् ! शास्त्र वचन तो सत्य हैं, इस सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है । मैं चाहता हूँ कि प्रभो ! शास्त्र की सत्यता भौतिक-वादियों के समक्ष भी सिद्ध हो । शास्त्र को गफ कहकर टालने वाले भूतात्मवादी भी देखें तो सही, शास्त्र वचन कितने सत्य हैं ॥६२॥

पीयूषसारं चरणोदकं ते
पिबामि नित्यं तुलसीदलेन ।
तत्पानतो व्याधिविनाश उक्तो
न जायतेऽकालगतिः कदापि ॥६३॥

भगवन् ! मैं नित्य आपके चरणामृत को पीता हूँ जो पीयूष का भी सारसर्वस्व है । वह भी सर्वरोगहर, दारिद्र्य हर तुलसीदल के साथ लेता हूँ । शास्त्रों में कहा है कि आपके चरणामृत पीने वालों को आधि-व्याधि कुछ नहीं होता है, न अकालगति (एक्सीडेन्ट) होती है ॥६३॥

विशेष--

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न जायते ॥

भगवन् ! आपका चरणामृत पान अकालगति-दुर्घटना से होने वाली गति को रोकता है, अकालगति नहीं होने देता । और सम्पूर्ण व्याधियों को नष्ट करने वाला, पुनर्जन्म न होने देने वाला चरणामृत पान है ।

यदा यदापत्तिरभूत्सुराणां
तदा त्वदीयां स्तुतिमाचरन् ते ।
स्तुतिक्षणे तूर्णतया त्वयापि
रक्षाव्यवस्था समकारि सर्वा ॥६४॥

भगवन् ! जब-जब देवताओं के उपर आपत्ति आई तब-तब देवताओं ने शरणागत होकर आपकी स्तुति की । आपने भी बिना विलम्ब किए उसी क्षण देवताओं की रक्षा हेतु समुचित व्यवस्था की ॥६४॥

श्रीकृष्ण ! तेऽनुग्रहतः सुराणां
सदा जयश्रीरभवत् पुरापि ।
स्वस्था अभूवन् भवदाश्रयेण
अतो भवन्तं शरणं प्रपद्ये ॥६५॥

हे श्रीकृष्ण ! प्राचीन समय में आपके अनुग्रह से देवताओं को सदा जयश्री मिलती रही है । आपका ही आश्रय करके देवता स्वस्थ हो गए । अर्थात् स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया । इसलिए मैं भी आपकी शरण में आया हूँ ॥६५॥

यदा यदा भक्तिमताञ्च यादृग्-
रूपेण रक्षा-करणीयता स्यात् ।

तदा तदा तद्विधरूपधारी
भूत्वा विधत्से स्वजनस्य रक्षाम् ॥६६॥

भगवन्! आपको जिस-जिस समय जिस रूप से शरणागत भक्तों की रक्षा करनी होती है आप वैसा ही स्वरूप बनकर भक्तों की रक्षा करते हैं। अर्थात् किस भक्त की रक्षा के लिए कैसा रूप धारण करना चाहिए, भक्त की अवस्था को देखकर वैसा ही आप बन जाते हैं ॥६६॥

प्रह्लादरक्षार्थमभूर्नृसिंह
औत्तानपादेस्तु चतुर्भुजोऽभूः।
शाटीस्वरूपः खलु याज्ञसेन्याः
कूर्मोऽभवो देवसुरक्षणार्थम् ॥६७॥

भगवन्! आप भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए नृसिंह बने। भक्त ध्रुव की रक्षा के लिए भगवान् चतुर्भुज बने। द्रौपदी की रक्षा के लिए साड़ी बन गए। देवताओं की रक्षा के लिए आप कूर्म बने। अर्थात् जहाँ जैसी आवश्यकता दीखती है, आप वैसा ही बनकर भक्तों की रक्षा करते हैं ॥६७॥

मीराऽपिबत् तद्गरलं प्रसन्ना
श्रीकृष्ण पादोदकभावनातः।
अर्चावताराात्मधियाऽहिपात्रे
उद्घाटिते सो प्यभवच्छिलार्च्या ॥६८॥

भावना का चमत्कार देखिए तो सही-भगवन्! भारतदेश के राजस्थान राज्य की राजांगना भक्तिमती मीरा को अपने देवर

राणा ने कुलगरिमा के विपरीत आचरण करने वाली समझ कर मारने के उद्देश्य से कटौरी में काले सर्प का विष, यह कहकर कि-- भगवान् का चरणामृत है, भेजा, और पिटारी में सपेरे से काले सर्प को डाल कर यह कहते हुए कि इस पिटारी में भगवान् शालिग्राम हैं, भेजा । मीरा ने विष को तो श्रीकृष्ण चरणामृत की भावना कर पी लिया, पिटारी में स्थित सर्प को भी शालिग्राम की भावना कर खोला तो सचमुच, विष अमृत बन गया, सर्प भगवान् शालिग्राम ही बन गया । तात्पर्य है कि भगवान् ही भावना से अमृत बने भावना से ही सर्प, शालिग्राम बनें । इस कलि में भावना का यह चमत्कार जीवन्त उदाहरण के रूप में है ॥६८॥

विशेष - उपर्युक्त तथ्य को मीरा ने स्वरचित भक्ति पद के माध्यम से प्रकट किया है, जो इस प्रकार है ।

राणा ने जहर दियो मैं जाणि ।
जिन हरि मेरो नाम निवेग्यो, छप्यो अरु दूध पाणि ॥
जब लग केचन कसियन नाहि, होत वारह वाणी ।
अपने कुल को परदो करिवा, मैं अबला वौराणि ॥
स्वपच भक्त वारौं तन मन ते म्हैं हरि हाथ पिकाणि ।
मीरा के प्रभु गिरिधर भजिवे को सन्त चरण विकाणि ॥

मीरा मगन भइ हरि के गुण गाय ।
सांप पिटारा राणा भेजा मीरा हाथ दिजाय ।
न्हाय धोय जब देखण लागि शालग्राम गइ पाय ।
मीरा के प्रभु सदा सहाय, राखे विघ्ण हटाय ।
भजन भाव में मस्त डोलती गिरिधर पै बलि जाय ॥

अशेषकल्याणगुणैकराशौ
सत्ये चिदानन्दमयस्वरूपे ।
चित्तं यदीयं सुतरां हि लग्नं
रोगादि विघ्ना न भवन्ति तस्य ॥६९ ॥

भगवन् ! आप सौन्दर्य, माधुर्य, सौशील्य, कारुण्य, वात्सल्य आदि अशेष गुणों के आश्रय हैं आपका स्वरूप सच्चिदा-नन्दमय है, ऐसे आपमें जिसका चित्त सुतरां संलग्न है, उसके रोग विघ्न कैसे हो सकते हैं, अर्थात् आनन्दमय आपमें लगा चित्त, शरीर को भी सुखी बना देता है ॥६९ ॥

जगद्विकारैरभिमर्दितत्वा-
दहं न तादृग् भगवन् ! तथापि ।
पितुः प्रियो बाल इवाश्रयामि
भवन्तमाराध्य ! कृपानिधान ॥७० ॥

मेरे आराध्य ! भगवन् ! मैं तो संसार के विकारों से अभिमर्दित हूँ, इसलिए आपमें मेरा चित्त कैसे लग सकता । तथापि कृपानिधान ! जैसे अबोध बालक माता-पिता के आश्रित है, वैसे ही मैं भी आपके ही आश्रय में रहता हूँ ॥७० ॥

न शास्त्रबोधोऽध्ययनाद्यभावात्
न भक्तिभावो विषयप्रभावात् ।
नार्चा न चर्चा भवतः कदापि
त्वां केवलं नौमि नतेन मूर्ध्ना ॥७१ ॥

भगवन् ! मुझ में अध्ययन के अभाव में शास्त्रीय ज्ञान नहीं है, विषय के प्रभाव से भक्तिभाव भी नहीं है, न आपकी अर्चा करता हूँ न आपकी चर्चा, केवल नतमस्तक होकर आपको प्रणाम करता हूँ ॥७१॥

न मन्त्रसिद्धिर्नच तन्त्रसिद्धि-
र्न योगसिद्धिर्न च साधनादेः ।
न पाठपूजे भगवन् ! मदीये
परं भवन्तं हृदयेन मन्ये ॥७२॥

भगवन् ! न मुझ में मन्त्रसिद्धि है, न तन्त्रसिद्धि, न योगसिद्धि है, न साधनसिद्धि, न मैं पाठ करता हूँ, न पूजा, सर्व-साधन हीन हूँ । तथापि प्रभो ! मेरी आपमें बड़ी आस्था है, आपको हृदय से मानता हूँ ॥७२॥

न ध्यानधीर्नापि मनः प्रवृत्ति-
र्न बुद्धिवैशद्यमथो न शुद्धिः ।
न कीर्तनं नो भजनं स्तुतिश्च
परन्तु गोविन्द ! हृदैव मन्ये ॥७३॥

हे गोविन्द ! न मेरा आपके स्वरूप का ध्यान है, न मन की प्रवृत्ति है, न बुद्धि वैशद्य है, नाहीं शुद्धि है, न कीर्तन करता हूँ न भजन न स्तुति ही करता हूँ । किन्तु प्रभो ! मैं आपको हृदय से मानता तो हूँ ॥७३॥

न साधुसङ्गोऽस्ति न तीर्थयात्रा
नोदारभावो न निरीहसेवा ।

न धर्मबोधोऽस्ति न वृत्तिशोध-
स्त्वां केवलं नौमि कृपानिधान ।।७४ ।।

हे कृपानिधान ! न मैंने सत्संग किया है न तीर्थयात्रा, न मुझ में उदारता है न गरीबों की सेवा, न मेरा धर्मबोध है, न वृत्तिशोध है, प्रभो ! केवल मैं तो आपको नमन ही कर पाता हूँ ।।७४ ।।

तपो न मे नो नियमा यमाश्च
न धारणा ध्यानसमाधिसेवा ।
तथापि गोविन्द ! गुरोः कृपातः
कृष्ण ! त्वमेवासि ममेष्टदेवः ।।७५ ।।

हे भगवन् ! न मेरा तप है, न शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधानरूप नियमों से एक है, न अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहरूप यम है, न धारणा, ध्यान, प्राणायाम, समाधि का अभ्यास है, तथापि श्रीकृष्ण ! श्रीगुरुदेव की कृपा से निर्दिष्ट मेरे उपास्य इष्टदेव तो आप ही हैं । इसलिए मुझे महान् सन्तोष है ।।७५ ।।

अहं दुराचारपरो दुरात्मा
नास्त्यत्र सन्देहलवस्तथापि ।
प्रभो ! तवाराधनसाधनादौ
श्रद्धा तथास्था महती ममास्ति ।।७६ ।।

प्रभो ! मैं निःसन्देह दुराचारी और दुरात्मा हूँ, क्योंकि पूर्वोक्त साधनों में से जब एक भी मुझ में नहीं तो और क्या हो

सकता हूँ । तथापि भगवन् ! साधनों के अभाव में भी आराधना-साधना में मेरी श्रद्धा और आस्था तो महती है ॥७६॥

आचारहीनोऽपि भवन्तमेव
भजत्यनन्यो यदि वासुदेवम् ।
स साधुरेव व्यवसाययुक्त-
स्तथाविधोऽहं गणनाय योग्यः ॥७७॥

भगवान् ! यदि आचारहीन व्यक्ति ही क्यों न हो अनन्यभाव से आपका भजन-साधन करता है तो वह निश्चय बुद्धि वाला साधु ही कहा जाएगा । मैं ऐसे लोगों में गिनने योग्य हूँ ॥७७॥

विशेष--

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

(गी०-१३-३०)

भगवन् ! आपने ही गीता में कहा है कि यदि कोई व्यक्ति अतिशय दुराचारी होने पर भी अनन्य भाव से मुझको ही भजता है तो वह साधु ही मान्य होता है । क्योंकि आपको वस्तुतः जानने की बुद्धि उसमें है ।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय ! प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

(गी०-१३-३१)

अनन्य भाव से भगवद्भजन करने वाला दुराचारी भी तुरन्त धर्मात्मा हो जाता है । शान्ति प्राप्त करता है । अर्जुन ! तुम प्रतिज्ञा करो, समझो मेरा (श्रीकृष्ण) भक्त कभी नष्ट नहीं होता ।

हरे ! रहः पूर्वजनेर्विचारं
करोमि किन्तूच्चतपो विनाहम् ।
कथं मनुष्योऽस्मि ततोऽपि विप्र-
स्तत्रापि सद्वैष्णवतामुपेतः ॥७८॥

भगवन् ! मैं एकान्त में बैठकर अपने पूर्वजन्म के सम्बन्ध में गम्भीर होकर विचार करता हूँ तो इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि पूर्व जन्म की उच्च तपस्या के विना मैं मनुष्य कैसे बना ? मनुष्यों में भी कुलीन ब्राह्मण, ब्राह्मणों में भी भगवत् शरणापन्न वैष्णव (निम्बार्क) कैसे बना । ये सब होने के लिए पूर्व जन्म का संस्कार ही कारण था ॥७८॥

श्रीकृष्ण ! ते शास्त्रविधौ विशेष-
विश्वासवानाचरणीयधर्मे ।
एतैर्विशेषैस्त्वनुमीयते मे
पुराजनेः सत्कृतयः समासन् ॥७९॥

श्रीकृष्ण ! शास्त्र आपकी आज्ञा हैं । उन शास्त्रों की विधि तथा शास्त्रप्रतिपादित आचरणीय धर्म में मेरा विशेष विश्वास है । इन विशेषताओं से अनुमान होता है कि मेरे पूर्वजन्म के सुकृत संस्कार अवश्य थे । जिससे आज मैं मनुष्य हूँ, ब्राह्मण हूँ और वैष्णव हूँ ॥७९॥

अस्यां जनौ यास्त्रुटयोऽभवन्मे
क्षन्तव्यतां यान्ति भवद्विधाने ।
गुणप्रभावादनिशं भवन्ति
दोषाः परं त्वच्छरणे न सन्ति ॥८०॥

भगवन् ! इस जन्म में मेरी बहुत सी त्रुटियां हो गई होंगी, परन्तु वे त्रुटियां आप के संविधान के अनुसार क्षम्य होगी ही । सत्व रजस्तमोगुण के प्रभाव से गलतियां तो होती रहती हैं, किन्तु आपमें शरणागत होने पर वे दोष टिक ही नहीं सकते ॥८०॥

विशेष--

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद् धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥

(भागवत एकादश स्कन्ध)

संसार की वासनाओं को त्यांगकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों को भजने वाले प्रिय भक्त से यदि कोई कथञ्चित् पाप कर्म हो जाए तो उस भक्त के हृदय में प्रवेश कर भगवान् उस विकर्म को धो देते हैं ।

अज्ञानतो बुद्धिविचारणातो
नाधर्म इत्येव विचिन्त्य वापि ।
मायाप्रभावात्प्रभवन्ति दोषाः
तथापराधं भगवन् ! क्षमस्व ॥८१॥

भगवन् ! अज्ञान से या बुद्धि से यह विचार करके कि ऐसा करना अधर्म नहीं हैं, और माया से वशीभूत होकर भी मुझसे अपराध हो सकते हैं ऐसे अपराधों को आप क्षमा करेंगे ॥८१॥

हे नाथ ! मायामवहातुमिच्छ-
न्नपि प्रगाढां नहि हातुमीशः ।
यदा कदा तद्वशतामुपेतुं
बाध्यो भवामीव हरे ! क्षमस्व ॥८२॥

हे नाथ ! मैं चाहता हूँ कि माया के सम्बन्ध से दूर रहूँ किन्तु ऐसा नहीं हो पा रहा है । क्योंकि माया ने मुझ को प्रगाढ रूप से जकड़ रखा है । न मालूम कितने जन्मों से सम्बद्ध हूँ । कभी-कभी तो मुझे जबरन बाध्य करती है यह मेरी विवशता समझकर हे हरे ! क्षमा करें ॥८२॥

श्रीकृष्ण ! कोपादथकामतो वा
लोभात्तथान्य प्रकृतेः प्रभावात् ।
पदे पदे पापमयं हि कर्म
मत्तो भवत्येव हरे ! क्षमस्व ॥८३॥

हे श्रीकृष्ण ! काम, क्रोध, लोभ, मोह, किंवा अन्यान्य प्रकृति के प्रभाव से पद पद में मुझसे पाप कर्म हो सकते हैं । यह मेरी विवशता समझ कर मुझे क्षमा करें ॥८३॥

अहन्तु दुष्कर्म कृदस्मि नाथ !
भवाँस्तु दुष्कर्मविनाशकारी ।
एवं स्वभावः प्रभुरस्ति मत्वा
सन्तोषमाधाय च निर्भरोऽस्मि ॥८४॥

हे नाथ ! मैं तो दुष्कर्म करने वाला सांसारिक जीव हूँ, परन्तु आप तो अपने शरणागत भक्तों के दुष्कर्मों को नाश करने वाले हैं । ऐसे स्वभाव वाले प्रभु को मानकर सन्तोष लिए, आप पर ही निर्भर रहता हूँ ॥८४॥

संसारसारार्पित चित्तवृत्ति-
श्चैको जनो दोषमयः कथन्न ।

असीमकारुण्यगुणेन नाथ !
त्वयोद्धृतः स्यामहमाशयाऽस्मि ॥८५॥

हे नाथ ! मैंने संसार को ही सार सर्वस्व मानकर अपनी चित्तवृत्ति को सांसारिक वासनाओं में लगा रखा है, इसलिए मैं नितान्त दोषी हूँ । किन्तु आप तो कारुण्य गुणसिन्धु हैं, एक आपका दोषमय व्यक्ति ही क्यों न हो, है तो आपका ही । आपके द्वारा मेरा उद्धार अवश्य होगा, इसी आशा को लिए हुए हूँ । मेरे उपर आप कृपा करेंगे ॥८५॥

सर्वत्र सर्वज्ञ उदाहृतोऽसि
भक्तापराधेऽज्ञ इतीरितोऽसि ।
श्रीकृष्ण ! ते भक्तजनानुकम्पिन्
क्षमामयीं दिव्यकृपां स्मरामि ॥८६॥

हे भक्तों के उपर अनुकम्पा करने वाले श्रीकृष्ण ! आपको वेदादि समस्त शास्त्रों ने **सर्वज्ञ** बताया है **यः सर्वज्ञ सर्ववित्** इसमें सन्देह नहीं हैं । किन्तु आप भक्तों के अपराध के सम्बन्ध में अज्ञ (अनजाने से) होते हैं । यह आपकी लोकोत्तर विशेषता है । भगवन् ! आपकी क्षमामयी दिव्य कृपा का सदा स्मरण करता हूँ ॥८६॥

त्वत्पादयुग्माम्बुजचिन्तनेन
दूरीभवन्त्याश्वशुभा विकाराः ।
रोगो विपत्तिः परयन्त्रतन्त्रे
दरिद्रता नश्यति मूलतो हि ॥८७॥

हे भगवन् ! आपके युगल चरणारविन्द के चिन्तन से अशुभ विकार शीघ्र ही दूर होते हैं । रोग, विपत्ति, दूसरों द्वारा प्रयुक्त तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र और दरिद्रता भी मूल से ही नष्ट होते हैं ॥८७॥

आपत्सु रोगादिषु सत्सु यस्य
त्वदाश्रये चोन्मुखता यदि स्यात् ।
वेद्यं तदीयं शुभलक्षणं त-
न्नश्यन्ति दुःखानि तदागतानि ॥८८॥

भगवन् ! आपत्ति आने पर विभिन्न रोग लगने पर, अथवा अन्य किसी प्रकार की विघ्न बाधाएँ उपस्थित होने पर जिस व्यक्ति की आपके आश्रय की ओर उन्मुखता होती है तो उसके लिए यह शुभ लक्षण है यह जानना चाहिए । उसकी समस्त बाधाएं हट जायेगी ॥८८॥

रोमावलीष्विन्द्रिय देहधान्यां
तथा यदन्तः करणेषु कृष्णः ।
तत्रान्य संसाररुजां प्रकोपाः
कथं भवेयुर्भवदर्पितानाम् ॥८९॥

हे श्रीकृष्ण ! जिनकी रोमावलियों, इन्द्रियों, प्रत्यङ्ग धमनियों तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन अन्तरिन्द्रियों में आप व्याप्त हों, ऐसे आप में समर्पित महानुभावों को संसार के रोगों का प्रकोप कैसे हो सकता है । अर्थात् जहां आप रहें वहां अन्य का प्रवेश हो ही नहीं सकता ॥८९॥

प्रातः सखीनां मधुरैर्वचोभि–
वींणाध्वनेर्गुञ्जनतो विनिद्रौ ।
असीमसौन्दर्य विभासिताशौ
राधाहरी भावपरः प्रणौमि ॥६०॥

प्रातःकालीन सात्विक वेला में अन्तरंग सहचरियों की रहस्यपूर्ण मधुरगीति तथा गीति की स्वरलहरी को चमत्कृत करने वाली मनोमुग्धकारी वीणा ध्वनि की गुञ्जन (गुनगुनाहट) से खुल गई निद्रा जिनकी, ऐसे असीम सौन्दर्य माधुर्य से दिशा विदिशा को आलोकित करने वाले श्रीराधाकृष्ण युगल सरकार का भावविभोर होकर स्मरण करता हूँ ॥६०॥

श्रीकृष्ण ! ते तन्मधुरस्वरूपं
दिदृक्षते चक्षुरिदं मदीयम् ।
कदापि साक्षाद् भव दिव्यरूप !
यतो ममौत्कण्ठ्यमतोऽधिकं स्यात् ॥६१॥

श्रीकृष्ण ! आपका वह मधुर स्वरूप, जो श्रीराधा की संयुति से निरतिशय बना है, ये मेरे नेत्र उसके दर्शन करना चाहते हैं । हे दिव्य रूपधारी प्रभो ! कभी मेरे सामने साक्षात् तो हो जाइए । जिस साक्षात्कार के बाद मेरी दर्शन उत्कण्ठा इससे भी अधिक हो जाए ॥६१॥

सौन्दर्यमाधुर्यगुणाभिरामं
रूपं मनोमुग्धकरं त्वदीयम् ।
द्रष्टुं समीहे यदि ते कृपा स्यात्
स्वप्नेऽथवा भावनसाधनायाम् ॥६२॥

भगवन् ! आपके लोकोत्तर सौन्दर्य माधुर्य आदि गुणों से निरतिशय रमणीय और मन को मुग्ध करने वाले दिव्यस्वरूप का दर्शन करना चाहता हूँ । यदि आपकी कृपा हो जाए तो वह दर्शन स्वप्न में हो, अथवा साधनावस्था में हो तो प्रभो ! मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा ॥ ६२ ॥

सदैव मे स्वच्छमनोनिकुञ्जे
वामाङ्गराधो वस माधव ! त्वम् ।
त्वद्रूपमाधुर्यमनन्तसीम–
मास्वादयेयं मनसाऽञ्जसाहम् ॥६३॥

हे माधव ! आप अपनी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा के साथ मेरे मन रूपी निकुञ्ज में चाहे वह स्वच्छ हो चाहे अस्वच्छ हो, सदा विराजमान हों । जिससे मैं उसी मन से सरलतापूर्वक आपकी अनन्तसीम गुणमाधुर्य का आस्वादन कर सकूँ ॥ ६३ ॥

यदा निकुञ्जेषु समस्तसेवा–
धिकारिणीभिः सह ते सखीभिः ।
आह्लादिनी शक्तिसमन्वितः सन्
चलन् कदा मेऽक्षिपथे हरे ! स्याः ॥६४॥

हे श्रीकृष्ण ! आपकी सम्पूर्ण सेवा में अधिकार रखने वाली रंगदेवी आदि सहचरियों सहित आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा के साथ श्रीवृन्दावन की निकुञ्जों में विहार करते हुए आप रहे हो मुझे वह दिव्य दर्शन का सुअवसर कब प्राप्त होगा ॥ ६४ ॥

प्रभो ! त्वदीये चरणारविन्दे
मनो मदीयं लगतात्सदैव ।
बुद्धिः सद्वानन्दमये स्वरूपे
चित्तं हरिं चिन्तयतादजस्रम् ॥९५॥

हे प्रभो ! मेरा मन आपके चरणारविन्द के मनन में लगा रहे । मेरी बुद्धि आपके आनन्दमय स्वरूप में स्थित हो । और मेरा चित्त, रोग, पाप, विपत्तियों को हरण करने वाले भगवान् श्रीहरि के मंगलमय स्वरूप का चिन्तन करता रहे ॥९५॥

वचः सदा गायतु ते चरित्रं
करौ त्वदीयार्चनसाधनौ स्तः ।
पादौ चलेतां तव दर्शनार्थं
शिरो नमेत्ते चरणौ शरण्यौ ॥९६॥

भगवन् ! मेरी वाणी सदा आपकी महिमा तथा चरित्र का वर्णन करती रहे । मेरे हाथ आपकी अर्चना के साधन बनें । मेरे पाद आपके दर्शन हेतु चलते रहें । मेरा शिर आपके शरण्य चरणों का नमन करता रहे । यही मेरी कामना है ॥९६॥

रूपं न पश्यामि नवा शृणोमि
जिघ्रामि नो नैव दधामि बुद्धौ ।
श्रीकृष्णनामैव जपामि राधा–
पूर्वं रसास्वादनमाचरामि ॥९७॥

भगवन् ! मेरी वाणी आपके रूप माधुर्य का कैसे वर्णन कर सकेगी ! न मैं आपकी रूप माधुरी को देख पा रहा हूँ, न मैं सुन ही

पारहा हूँ, न मैं घ्राण (नाक) से चरणाविन्द मकरन्द को सूंघ पा रहा हूँ, न मैं आपके सौन्दर्य, माधुर्य, गुणों को बुध्यारूढ कर पा रहा हूँ। मैं तो केवल इतना ही कर पाता हूँ कि श्रीराधेकृष्ण इस युगल नाम को जपता हुआ, तद्गतमाधुर्य का रसास्वादन लेता हूँ ॥६७॥

नामानि ते नाथ ! कियत्प्रियाणि
कियद् हृदानन्द कराणि देव ।
श्रीकृष्ण ! गोविन्द, हरे ! मुरारे !
मुकुन्द ! राधाप्रिय ! माधवेति ॥६८॥

हे वासुदेव ! आपके नाम कितने प्रिय हैं हृदय में कितना आनन्द भर देते हैं कहा नहीं जा सकता सुनिए तो सही--हे श्रीकृष्ण ! हे गोविन्द, हे हरे ! हे मुरारे ! हे मुकुन्द ! के राधाप्रिय, हे माधव ! कितने मधुर और मंगलमय नाम हैं ॥६८॥

न मे तवार्चाविषये प्रवृत्ति–
र्न योग्यता नापि विशेषभक्तिः ।
न वैभवं मे भवदर्चनार्हं
कृष्णेति वर्णद्वयमाश्रितस्य ॥६६॥

भगवन् ! आपकी सेवा–पूजा के विषय में मेरी प्रवृत्ति नहीं है । न मेरी योग्यता ही है । न आपमें मेरी भक्ति है, न मेरे पास अर्चना योग्य वैभव ही है । मैं तो केवल आपके नाम जो दो अक्षर है **कृष्ण** बस इसी का ही आश्रय लेता हूँ ।

कृषिर्भूवाचकः शब्द णश्च निर्वृत्तिवाचकः ।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥

कृष्ण नाम के दो अक्षरों का अर्थ ही बहुत महत्वपूर्ण है । कृष् का अर्थ सत्ता और ण् का अर्थ आनन्द है, अनन्त सत्ता और अनन्त आनन्द की जो समष्टि है वही ब्रह्म पदाभिधेय कृष्ण है । बस उसी का मैं सहारा ले रहा हूँ ।

श्रीकृष्ण ! राधेश ! रमेश ! राम !
नृसिंह ! नारायण ! वासुदेव !
गोविन्द ! गोपाल ! हरे ! धरेश !
मां पाहि सर्वेश्वर ! कूर्मदेव ! ॥१००॥

हे श्रीकृष्ण ! हे राधा हृदयेश ! हे रमेश ! हे नृसिंह ! हे नारायण ! हे वासुदेव ! हे गोविन्द ! हे गोपाल ! हे हरे ! हे धरेश, जगदीश्वर ! हे सर्वेश्वर ! हे कूर्मदेव ! आप मेरी सदा सर्वत्र रक्षा करें ॥१००॥

हरिशतकमनन्तानन्दकृष्णस्वरूपं
प्रणयभरमनरस्तो निःसृतंचाञ्जसैव ।
य इद मनु पठेयुः प्रेमविश्वासभाजो
हृदयगतसदिच्छां प्राप्य पूर्णा भवेयुः ॥१०१॥

यह हरिशतक, श्रीकृष्ण प्रार्थना शतक है जिसमें सत् चित् आनन्दमय श्रीकृष्ण का वास्तविक स्वरूप वर्णित है । यह शतक, प्रगाढ प्रेम, श्रद्धा और विश्वास भरे मन से अनायास निःसृत है । जो सज्जन श्रद्धा प्रेम और विश्वास से इस शतक का पाठ करेंगे, वे मनोवाञ्छित फल को प्राप्त कर परिपूर्ण हो जायेंगे ॥१०१॥

*

❊ शतक परिशिष्ट ❊

विधिं न जानामि न वेद्मितत्त्वं
साधारणं तेऽर्चनमाचरामि ।
ततः प्रसन्नो भगवन् ! भवांस्तु
मातेव वालं परिरक्षतीश ! ॥१॥

भगवन् ! मैं आपकी पूजा विधि क्या है, नहीं जानता, न मैं आपके तत्त्व को ही समझ पाता हूँ । मैं तो साधारण अर्चन करता हूँ । किन्तु माता अपने बालक को परितः रक्षा करती. है उसी तरह आप मेरी रक्षा करते हैं ॥१॥

पुष्पेण तोयेन समर्चितोऽपि
भक्तेप्सितं पूरयितुं प्रवृत्तः ।
त्वं केवलं वाञ्छसि भक्तिमेकां
अल्पार्चना भूरि भवत्यनन्त ! ॥२॥

भगवन् ! आप पुष्प जल तुलसी आदि से अर्चित होने पर भी भक्त की इच्छा पूर्ति करने के लिए सदा प्रवृत्त होते हैं । आप तो केवल भक्ति ही चाहते हैं दिखावा नहीं, आडम्बर नहीं चाहते । हे अनन्त ! आपके लिए तो भक्त की थोड़ी सी अर्चना भी अधिक होती है ॥२॥

हे नाथ ! वाञ्छामि सदाऽवधानं
सत्यं तपः शौचदयेऽधिकर्तुम् ।

तथापि मायावशतो हि मत्तः
क्रियान्वयो नो भवतीतिखेदः ॥३॥

हे नाथ ! मैं चाहता तो हूँ कि धर्म के चार पाद, सत्य, तप, शौच, दया को ससावधान अधिकार में ले लूँ । तथापि भगवन् ! माया के वशीभूत होकर मुझसे क्रियान्वय नहीं हो पाता यह खेद है ॥३॥

हे नाथ ! मायापि दुरत्ययास्ति
यदा कदा तङ्घयतीव भक्तान् ।
परं त्वदीयाङ्घ्रिसरोजपार्श्वे
स्थातुं क्षमा नास्ति ततो बिभेति ॥४॥

हे नाथ ! आपकी माया भी दुरत्यय है, कभी-कभी भक्तों को भी अपने वश में करने की मूड़ में होती है । किन्तु आपके चरणकमलों की सन्निधि में ठहर नहीं सकती, भयभीत होती है इसका मतलब है कि जब जीव आपके चरणकमलों का स्मरण भूल जाता है तब माया को प्रवेश करने का अवसर मिल जाता है ॥४॥

वंशीध्वनिर्धैर्यधुरन्धराणां
यो वै यतीनामपि मानसानि ।
आकृष्य वृन्दावनकुञ्जवीथी-
ष्वावासकामानि करोति नाथ ॥५॥

हे नाथ ! आपकी वंशी ध्वनि, धैर्य धुरन्धर योगियों के मन को आकर्षित कर श्रीधाम वृन्दावन की कुञ्ज वीथियों में आवास करने की भावना जागृत कर देती हैं, औरों की तो बात ही क्या है ॥५॥

विश्वाङ्गणे कस्तव गीतया न
प्रभावित स्तत्र किमेव नास्ति ।
गीता सुगीता खलु येन तेन
जितं जगत् ज्ञानमवाप सर्वम् ॥६॥

भगवन्! विश्व प्रांगण में कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो आपकी गीता से प्रभावित नहीं हो, गीता में क्या नहीं है ? चाहे वह ज्ञानी हो या भक्त हो, चाहे वह योगी हो या संन्यासी हो, चाहे वह राजनैतिक नेता हो या सामाजिक कार्यकर्ता हो, चाहे गृहस्थ हो या ब्रह्मचारी हो, सबके लिण पूर्ण है, जो चाहे सो मिल जाए । जिस व्यक्ति ने गीता को सुगीता किया, तब यह समझना चाहिए कि उसने जगत् को जीता और सम्पूर्ण ज्ञान भी प्राप्त किया ॥६॥

श्रीकृष्ण ! नामाक्षरयोरगाध-
माधुर्यमास्वाद्य भवामि मग्नः ।
कं नाम नाकर्षति कृष्ण नाम
नामैव साक्षाद् भगवान् हि कृष्णः ॥७॥

हे श्रीकृष्ण ! आपके नाम में जो कृष्ण अक्षर हैं उनमें अगाध माधुर्य है । कृष्ण नाम के अक्षर द्वय-कृष्, अनन्तसत्ता, ण अनन्त आनन्द की मधुरिमा का आस्वादन करके मैं भावमग्न होता हूँ । संसार में कौन ऐसा व्यक्ति होगा जिसको कृष्ण नाम आकर्षित न करे । नाम-नामी में अभेद सम्बन्ध होने से कृष्ण नाम ही साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण ही साक्षात् कृष्ण नाम है ॥७॥

हे नाथ ! सर्वात्मतया प्रपन्नो–
ह्यनन्यनाथोऽस्मि ज़गच्छरण्य ।
शून्योऽपि सत्साधनतः कृपालो !
संरक्षणीयः सुतरां त्वयैव ॥८॥

हे नाथ ! हे जगत् को शरण देने वाले कृपालो ! मैं सर्वात्म-भाव से शरणागत हूँ । मेरा कोई दूसरा आश्रय नहीं है, और मैं सर्वसाधन शून्य हूँ, अतः आप ही मेरी सुतरां रक्षा कीजिए ॥८॥

*

* सूर्याष्टकम् *

(१)

नमोस्तु सूर्याय समस्ततेजोमूलाय मूलप्रकृतीश्वराय ।
नमोस्तु वृन्दारक वन्दिताय त्रिलोकदीपाय नमो नमोऽस्तु ॥

भगवान् सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देव हैं, अपनी उदयास्तमय क्रिया से सृष्टि-प्रलय की शिक्षा प्रदान करते हुए विश्व को यह सन्देश देते हैं कि सृष्टि-प्रवाह निरन्तर गतिशील है । सूर्यदेव जिस प्रकार चराचर जगत् को प्रकाश, ऊर्जाशक्ति, नवजीवन प्रभृति दृष्ट फल देते हैं उसी प्रकार अपने उपासक भक्तों को अदृष्ट फल भी सद्यः प्रदान करते हैं । अपने जीवन को मंगलमय बनाने के लिए आठ पद्यों में उनका स्तवन किया जाता है ।

उन सूर्यदेव को भक्तिभाव पूर्वक नमन है जो समस्त-तेजस्तत्व के मूल आधार हैं । वे स्वयं मूल प्रकृति के अधीश्वर हैं, इन्द्रादिदेववृन्द भी आत्म कल्याण हेतु जिनका वन्दन करते हैं तथा जो त्रिलोकोपलक्षित चतुर्दश भुवन रूप प्राकृत मण्डल के प्रदीप स्वरूप हैं उन भुवन भास्कर को बारम्बार प्रणाम है ॥१॥

(२)

नमोऽस्तु सूर्याय जगद्धिताय जगत्तमोभावविदारकाय ।
नमोऽस्तु संसारप्रबोधकाय भक्तस्य नैरुज्यविधायकाय ॥

जो चराचर जगत् के प्रभूत अन्धकार को विदीर्णकर सदा विश्व हित करते हैं, उन सूर्यदेव को मैं प्रभातवेला में नमस्कार करता हूँ । जो रुजाक्रान्त व्यक्ति भक्ति पूर्वक उनकी शरण में जाता है अर्थात् विनम्र भाव से प्रार्थना करता है उसके सर्वविध रोगों को नष्टकर वे उसे स्वस्थ-नीरोग कर देते हैं और अपने उदयन क्रिया से संसार के प्राणीमात्र को जगा देते हैं ऐसे जगत् प्रेरक भगवान् सूर्यदेव को बारम्बार नमन है ॥२॥

(३)

नमोऽस्तु सूर्याय विभाकराय विवस्वते विश्वविबोधकाय ।
नमोऽस्तु सज्ज्ञानघनायतस्मै प्रत्यक्षमीशाय नमो नमोऽस्तु।

जो विश्व को अपनी किरण प्रसार विधि से अन्त-र्बहिः उभयात्मक विशिष्ट ज्ञान कराते हैं अतएव विवस्वान् एवं विभाकर संज्ञा को धारण करते हैं उन सूर्यदेव की प्रणति पूर्वक शरण ग्रहण करता हूँ । जो प्रत्यक्ष में कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं सर्व समर्थवान् ईश्वर हैं और गायत्री प्रतिपाद्य दिव्य वरेण्य तेज के घनीभूत स्वरूप हैं, उन सवितृदेव को नमन पूर्वक सदा हृदय में ध्यान करता हूँ ॥३

(४)

नमोऽस्तु सूर्याय सनातनाय सदात्मने स्थावरजङ्गमानाम् ।
नमोऽस्तुभक्तेप्सितपूरकाय तेजस्विने तेज उपार्जकाय ॥

जो परब्रह्म परमात्मा की नखमणिचन्द्रिका के उर्जस्वत् तेज पुञ्ज होने से अजन्मा, अविकारी, सनातन कहे जाते हैं, समस्त स्थावर जङ्गम के कण-कण में सत् स्वरूप से व्याप्त रहने के कारण सदात्मा हैं उन सूर्यदेव को हमारा नमन सदा समुल्लसित हो । एवमेव जिनकी ऊर्जाशक्ति को प्राप्त कर सारा जगत् ऊर्जस्वत् बनता है और उसकी क्षीण ऊर्जा पुनः उपार्जित होती है ऐसे परम तेजस्वी एवं प्रपन्नजनों की अभिलषित कामना को सदा पूर्ण करने वाले सूर्यदेव को बारम्बार नमन है ॥४ ॥

(५)

नमोऽस्तु सूर्याय सदर्थदाय मनुस्वरूपाय सतां मताय ।
नमोऽस्तुनारायणनामभाजे देवाधिदेवाय नमो नमोऽस्तु ॥

धर्मादि पुरुषार्थ को प्रदान करने में सदा उद्यत, सज्ज्नों के समाराध्य तथा वैवस्वत मनु के जनक होने से **आत्मा वै जाते पुत्रः** के अनुसार स्वयं मनु स्वरूप हैं जो नारायण नाम को धारण करते हैं उन देवाधिदेव सूर्य भगवान् को पुनः पुनः नमन करता हूँ ॥५ ॥

(६)

नमोऽस्तु सूर्याय समस्तकर्म–सत्साक्षिणे कर्मणि योजकाय ।
नमोऽस्तु सत्कर्मकृतां कृते सत्–फलप्रदानाय कृतोदयाय ॥

लोगों के समस्त कर्मों के जो साक्षी हैं तथा सबको स्वानुरूप कर्म करने हेतु नियोजित करने वाले, उन सत्कर्मों में प्रवृत्त निरालस

निरत जनों को अभीष्ट फल प्रदान करने वाले अपने कर्तव्य कर्म में सदा उदीयमान किंवा कर्मोद्यत व्यक्ति को उन्नति पथ पर पहुँ-चाने वाले भगवान् श्रीसूर्यदेव को श्रद्धाभक्ति पूर्वक सदा नमन करता हूँ ॥६॥

(७)

नमोऽस्तु सूर्याय जगत्सवित्रे भर्गस्वरूपाय सुराधिपाय ।
नमोऽस्तु सप्ताश्वरथस्थिताय बोधं विधातुं स्वरुणोदयाय ॥

रात्रि रूपी प्रलय में लीन जीव संघ को उषःकाल में अरुणोदय द्वारा जागृत करके अपने-अपने अधिकारानुरूप कार्य में प्रेरित करने वाले, अनन्त तेजःस्वरूप, देवगणों में अग्रगण्य, सात घोड़ों वाले रथ में अवस्थित होकर त्रिलोक को निरन्तर आलोकित करने वाले भगवान् विभावसु श्रीसूर्यदेव को बारम्बार नमन करता हूँ ॥७॥

(८)

नमोऽस्तु सूर्याय नवोदयाय मोदप्रदप्रोज्ज्वलशान्तभासे ।
नमोऽस्तु नैरुज्यकृते समस्त-विद्याधनायुष्यबलप्रदाय ॥

प्रभात वेला में बालारुण तेज से युक्त जब नवीन रूप में उदित होते हैं तब वह आतप सबको अमित मोद (प्रसन्नता) प्रदान करता है ऐसे परमोज्ज्वल शान्त तेजः स्वरूप बालसूर्य को मेरा नमन समुल्लसित हो । जो रुजाक्रान्त को नैरुज्य प्रदान करते

हैं और सकाम भक्तों को समस्त विद्या, धन, आयुष्य और अतुल बल प्रदान करते हैं उन सर्वगुणनिधान सूर्यदेव को शारीरिक व्याधि-निवृत्ति पूर्वक भगचद्भक्ति प्रदान करने के लिये समर्पित भाव से बार-बार विनय के साथ नमन करता हूँ ॥८॥

(६)

यः पटेद्भक्तिभावेन सूर्याष्टकमिदं सदा ।
आरोग्यं धनमायुष्यं लभते विजयश्च सः ॥

इस सूर्याष्टिक को जो भक्तिभाव से सदा पाठ करेगा उस साधक को सूर्यदेव की कृपा से आरोग्य, धन, आयुष्य, विद्या, विजय सब कुछ प्राप्त होगा ॥६॥

*

* श्रीवृन्दावनस्वरूपम् *

दृष्टौ प्राकृतमप्युदस्तमनसोवृत्तौ सदा चिद्घनं
लोकातीतमहत्वशालिरजसां दीव्यत्कणैरञ्चितम् ।
माधुर्यामृतधारयापरिगतं कुञ्जात्मना भासितं
श्रीवृन्दावनमस्ति सर्वभुवने मूर्द्धन्यधामाग्रणि ॥१॥

वाच्छा पूरमदः सुरद्रुम इव स्वान्तस्स्थवाञ्छामणि
तापे चन्द्रविभेव शान्तिसुखदं पापात्समुद्धारकम् ।
आनन्द प्रचुरं प्रकामसरसं कृष्णश्रिया शोभितं
किंवा धामस्वरूपतः प्रकटितं ब्रह्मैव वृन्दावनम् ॥२॥

वृन्दावन्द्यलताप्रसूनविलसत्कालिन्दिकानीलिमा
चन्द्रश्वेतमृदुस्वभावसिकता कान्तिश्च कान्ताविव ।
शोभेतेऽप्यधुनाऽपरोक्षविधया राधाहरी रासगौ
तस्मात्तत्त्वतया विदन्ति विबुधाः श्रीधामवृन्दावनम् ॥३॥

यत्रत्या प्रकृतिः प्रकाम सरसा स्वानन्दसच्चिद्घना
ब्रह्मानन्दमनस्विनामपि मनांस्याकर्षति स्वश्रिया ।
ब्रह्मा वाञ्छति चोद्धवोऽपि वनुते वृन्दावने स्वांजनिं
कश्चातो महिमा भवेद् वनभुवः सर्वात्मवृन्दावनम् ॥४॥

कृष्णाकर्षणचुम्बकाहृतमना अद्वैतसिद्धान्तकृत्
आचष्टे मधुसूदनो बुधवरस्तत्त्वं न कृष्णात्परम् ।

श्रीकृष्णस्य विहारभूः स्ववसतिः श्रीधामवृन्दावनम्
श्रीकृष्णार्पित चेतसामिदमहो आकल्पवासोचितम् ॥५॥

राधाकृष्ण पदारविन्दमनसां भावेष्वनन्तायितं
श्रीवृन्दावनमभ्युदेति सरसं तद्वस्तुतश्चिद्घनम् ।
राधाकृष्णपदारविन्दरजसा चैतन्यकल्पामही
यत्रैवास्ति निकुञ्जभव्यभवनं पीयूषसारं पयः ॥६॥

यत्रत्याः पशुपक्षिणोऽपि भगवद्भक्ता लतापादपाः
लीलास्वादसमुत्सुका इव समे दृश्यन्त एवोपलाः ।
धन्यं धाम धराविभूषणमिदं चेतश्चमत्कारकं
श्रीवृन्दावनधाम नामजपतामानन्दसन्धायकम् ॥७॥

काव्यं कल्पयतां वचः सफलता श्रीधामवृन्दावनात्
तीर्थं धाम च कुर्वतां सफलता श्रीधामवृन्दावनात् ।
तत्त्वं ध्यानवतांधियः सफलता श्रीधामवृन्दावनात्
किंवा सर्वचिदात्मनां सफलता श्रीधामवृन्दावनात् ॥८॥

* श्रीगंगागौरवम् *

अयेमातर्गङ्गे ! तव जल कणस्पर्शि पवन–
परिस्पर्शात्पूतो भवति मनुजो दूरपथगः ।
भवत्या भूयासं क इह महिमानं कवयितुं
क्षमः स्यात्काव्यज्ञः कविरपि न यावत्तवकृपा ॥१॥

हरेः पादाम्भोजाङ्गुलिनखमयूखे ! सुरसरित् !
नरा नार्यो भक्ताः प्रणयरसपूर्णात्ममनसः ।
महाभावोद्धारा विमल मतयो गद्गदगिरः
स्तुवन्तो दृश्यन्ते सततममले ! ते शुभतटे ॥२॥

कया वाचा युष्मज्जलगतमहत्वं प्रकटितं
भवेन्मातः ! साक्षात् त्वमसि भगवत्पादसलिलम् ।
इयत्ता ते नास्ति प्रचुरगुणसीम्नो भगवति !
इयत् कांक्षे देवि ! स्मरणमनिशं ते खलु भवेत् ॥३॥

जनो ब्रह्मज्ञानं सपदि लभते ते स्मरणतो
नमस्कारान्नाशो भवति कलुषाणां शुभजले ! ।
त्वदीयाम्भः स्नानान्मधुरजलपानाद् भगवति
दुरापं लोके किं तव वद कृपामाश्रितवतः ॥४॥

महत्त्वं वेत्तारस्तव शुभगुणानुप्रवचने
प्रवृत्ता दृश्यन्ते क्वचिदपि समाधिप्रणवने ।

क्वचित्सन्ध्याध्यानाचरणरतविप्राः क्वचिदपि
स्तुवन्त्यः सुन्दर्यः सरसवचनैर्यान्ति दृशि मे ॥५ ॥

सुधाधारे ! गङ्गे ! त्वमसि गरिमा भारतभुवः
गुणागारे ! मातस्त्वमसि महिमाऽनन्त जगतः ।
सतां साध्येऽनन्ते यदपि मधुरं तत् तव जलम्
चिदानन्दः किंवा वहति वसुधायां सुरसरित् ॥६ ॥

महत्त्वं ते गङ्गे ! जयति विदितं निर्मलजला–
न्निधायापो यन्त्रे सविधि सुपरीक्षापि विहिता ।
ततो निकर्षोऽभूत् तव जलसमं नास्ति भुवने
इदानीं तत् तत्त्वं कथमिव विलुप्तं समभवत् ॥७ ॥

इदानीं ते गङ्गे ! नगरवसतेर्निर्गतमल–
प्रगाढापां पातादतिमलिनरूपं जलमभूत् ।
समीक्ष्यैतद् दुःखं भवति महतां चेतसि परं
महाश्रद्धावन्तो जलविमलभावं विदधते ॥८ ॥

अहो मातः ! सोढ्वा विकृतमलधारामपि, सुधां
ददास्यन्तर्भूतामभिनवमहत्वेन भरिताम् ।
अतः सर्वे श्रद्धावनतहृदयाः स्नान्ति समले
जले शुद्धात्मानो भवभयहरे ! पासि जनताः ॥९ ॥

यथाब्जं पङ्को न प्रभवति मलीकर्तुममलं
सदा स्वच्छं भाति प्रकृतिनियमै र्यन्त्रितमिव ।

मलाक्रान्तापि त्वं निजगतमहत्वेन महिता
पुनासीमान् लोकान् प्रकृतिनियतस्वच्छसलिलैः ॥

शरण्ये ! संसारार्णव विषययादोगणमुख-
महाग्रासत्रासाकुलजनपरित्राणकृदसि ।
तवास्तां मे गङ्गे ! पदकमलयोः प्रेम परमं
परार्था मे बुद्धिः प्रसरतु परब्रह्मपदजे ॥११॥

यदाचिन्तामग्नः शरणमुपगच्छामि भवतीं
तदा चिन्तानाशो भवति सुखमाप्नोमि मधुरम् ।
तमानन्दं वाणी कथयितुमलं नास्ति मम तु
समीहे मातस्त्वच्चरणरतिरास्तामनुपलम् ॥१२॥

यदा रम्ये तीरे मधुरजलधारामधुरिम-
समास्वादोत्कण्ठातिशयवरिवस्यावृतमनाः ।
कदाचिद् गच्छामि प्रभुचरण चिन्तापरतया
तदानन्दं मातर्वितरसि न जाने कथमिव ॥१३॥

यथाशीघ्रं शोध्या सुरसरिद्वियं दूषणगता
यतो ऽस्माकं वृत्तं पुनरपि पुरेवास्तु विशदम् ।
भवेद् गङ्गा स्वच्छा, भरतनृपतेर्भूतलमिदं
पवित्रं सत् स्वीयं वितरतु महत्वं प्रतिदिशम् ॥१४॥

श्रीहनुमाष्टकम्

श्रीसीतारामपादाम्बुजरसमधुपो भावुको भक्तराजः
श्रीसीतारामसेवार्पिततनुरतनुस्वात्मतेजः प्रभावः ।
रामात्माराधनात्मा सकलगुणनिधिर्वायु सूनुः शरण्यः
श्रीसीतारामपादस्मरणकृतमतिः पातु वातात्मजो माम् ॥१

देवैर्गेयप्रभावो दनुजदलरिपुर्दीनभक्तानुकम्प्यः
दिव्यात्मा दिव्यकार्यः कपिकुलतरणिर्जानकीवृत्तवेत्ता ।
दुष्पारापारवारान्निधितरणतरी रामनामाङ्कितागः
श्रीसीतारामपादस्मरणकृतमतिः पातु वातात्मजो माम् ॥२

साक्षाद्ब्रह्मादिदेवैरपि सुगमतयाऽज्ञेयतत्वस्य यस्य
श्रीमद्रामस्य सेवामतिनिकटतया प्राप्तवान् भक्तिभावात् ।
श्रीरामानन्दतत्त्वावगममुखरितो यस्य हर्षप्रकर्षः
श्रीसीतारामपादस्मरणकृतमतिः पातु वातात्मजो माम् ॥३ ॥

यद् यत्कार्यं विधत्ते तदनु भगवतो मन्यते नामशक्तिं
विश्वासात्कार्यसिद्धिर्भवति हनुमता ऽदर्शि प्रत्यक्षमेव ।
श्रीसीतारामनामातुलशुभमहिमख्यापकः ख्यातभक्तिः
श्रीसीतारामपादस्मरणकृतमतिः पातु वातात्मजो माम् ॥४ ॥

दुर्दान्तान् दानवारीन् दलयितुमतुलां शक्तिमाधाय सिन्धो
र्दुष्पारां वारिधारां सजयमभयमुत्तीर्य लङ्कां प्रविश्य ।

जानक्यै रामवृत्तं सविनयमभिधायात्मकार्यप्रसन्नः
श्रीसीतारामपादस्मरणकृतमतिः पातु वातात्मजो माम् ॥५

स्वान्ते श्रीराममूर्तिर्मुखमनु भगवन्नामसङ्कीर्तनञ्च
भावे श्रीरामभक्तिर्भगवदनुभवानन्दमग्नस्य यस्य ।
सेवाकार्यप्रसन्नः प्रभुपदवसतिः प्रेमरोमाञ्चितः सः
श्रीसीतारामपादस्मरणकृतमतिः पातु वातात्मजो माम् ॥६

श्रीमद्रामस्य साक्षादनुपम महिमज्ञानतो हृष्टचेताः
तद्ध्यान प्राप्तभक्तिप्रकटितपरमोत्कृष्टचेतः प्रवृत्तिः ।
नित्यं श्रीराममग्नः प्रमुदितहृदयः प्रेममूर्तिः कपीशः
श्रीसीतारामपादस्मरणकृतमतिः पातु वातात्मजो माम् ॥७॥

विश्वासाद् ये यदीयं भजनमभयदं कुर्वते प्रेमपूर्णाः
शुद्ध स्वान्ता लभन्ते कपिभजनरताः सत्फलं वाञ्छितार्थम् ।
तेषां रक्षां विधते निरवधिकृपया सर्वतः सर्वदैव
श्रीसीतारामपादस्मरणकृतमतिः पातु वातात्मजो माम् ॥८॥

प्रेम्णा पठन्ति ये दिव्यं हनुमदष्टकं सदा ।
तेभ्यः प्रयच्छति प्रीतो हनुमान् वाञ्छितं फलम् ॥

रचयिता : प्रा. श्रीहरिशरण उपाध्याय
(निम्बार्कभूषण)
व्या. सा. वेदान्ताचार्य

वर्तमान निवास : श्रीनिम्बार्कदर्शन केन्द्र–श्रीराधाकृष्ण मन्दिर, गैंडाकोट, जि.–नवलपरासी, लुम्बिनी अंचल (नेपाल)

जन्म स्थान : कुलुङ् खोला, जिला–स्याुङ्जा, गण्डकी अंचल (नेपाल)

जन्म : वि.सं. 1987

कार्यक्षेत्र : सेवानिवृत्त प्राचार्य
श्री निम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय,
वृन्दावन, मथुरा, (उ.प्र.)

:: प्रकाशक ::

अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठस्थ शिक्षा समिति